चौक घंटाघर

उपन्यासकार

सत्यपाल आनन्द

१९५९
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक

साहित्य प्रकाशन

मालीवाड़ा, दिल्ली

मूल्य

तीन रुपये आठ, आने

मुद्रक

रामा कृष्णा प्रेस,

दिल्ली।

दो शब्द

'चौक 'घंटाघर' निश्चित रूप से हिन्दी में छपने वाला एक नये ढंग का उपन्यास है, जिसमें कोई किस्सा नहीं है और बहुत-से किस्से हैं, कोई कहानी नहीं है और कई कहानियाँ हैं, कोई विशेष पात्र नहीं है और बहुत से पात्र हैं, कोई समस्या नहीं है और बहुत-सी समस्याएं हैं, कोई घटना नहीं है और अनेकों घटनाएँ हैं।

एक स्थान विशेष है, उसके इर्द-गिर्द का सुबह, दोपहर और शाम तक का पूरा वातावरण है, उसके आस-पास की दुनियाँ है और उसमें बसने वाले बहुत से नर-नारी हैं, उनके कार्यकलाप हैं, पारस्परिक व्यवहार हैं, और है उनकी दिनचर्या का ऐसा सजीव चित्र जिसमें उनके जीवन को बहुत सफ़ाई के साथ आँका जा सकता है, परखा जा सकता है।

यह स्थान है चौक घंटाघर, शायद लुधियाने का चौक घंटाघर, जिसके ऊपर लेखक की दृष्टि न जाने कितने दिन से निरन्तर फैलती रही है, जिसके वातावरण में वह लगातार घूमता रहा है और जिसकी बारीकियों को वह चुन-चुन कर समय-बे-समय अपने मस्तिष्क और हृदय में रखता रहा है। एक-एक घटना और एक-एक पात्र के क्रियाकलाप की माला गूँथता रहा है और यह उपन्यास लेखक की गूँथी हुई वही माला है जिसे चौक घंटाघर के गले में पहना कर मानो उसके इर्द-गिर्द की दुनियाँ का उसे उपहार लेखक ने प्रदान किया है।

समस्त उपन्यास एक स्थान और उसके आस-पास की दुनियाँ का

ऐसा यथार्थवादी चित्रण है कि जिसे पढ़कर पाठक के सामने वहाँ की दुनियाँ साकार रूप में आकर खड़ी हो जाती है। वास्तविक चित्रणों से पूर्ण इस उपन्यास का मैं हिन्दी में स्वागत् करता हूँ।

उपन्यास के विषय में अधिक विस्तार मे टिप्पणी प्रस्तुत करके पाठकों की उसे पढ़ने की उत्सुकता को खोदेना उचित न समझकर ही विशेष कुछ नहीं लिखूँगा। पाठक इसे पढ़ें और इसकी निराली विशेषता को स्वयं परखें।

— यज्ञदत्त शर्मा

सुबह

सुबह हुई है !

घंटाघर की घड़ियों पर क्रमशः पाँच, पाँच बज कर पाँच मिनट, और पौने पाँच बजे हैं। चौथी घड़ी ख़राब है, पिछले दो मास से ख़राब है, सो इस समय वह डेढ़ बजा रही है; सारा दिन और सारी रात डेढ़ ही बजाती है।

अभी सूर्य नहीं निकला है। दुकानों के कोनों, सूराखों और छिद्रों से भी अंधेरा धीरे-धीरे सिमट रहा है। एक क्षण के लिए हवा का एक ठण्डा झोंका आया है और बोझिल वातावरण चौंक सा गया है। घंटाघर के पीछे फ़ौजी-सराय के मुर्गे की लम्बी बाँग की आवाज़ सुनाई पड़ी है। इसके समाप्त होते ही दूसरा मुर्गा जेलघर से बोला है और फिर जैसे वास्तव में सुबह हो गयी है।

प्रतिदिन यूँ ही होता है। सुबह समय की चारपाई पर चिचोड़ी हुई वेश्या की तरह पड़ी रहती है। अंग-अंग निढाल, रात के नशे और मस्ती से चूर। पाप की भावना और भावना की दुःखद परछाईं से अर्धमृत, अर्धजागृत, अर्धस्वप्निल पड़ी रहती है, कि एक ओर से एक मुर्गे की बांग की आवाज़ आती है। दूसरी ओर से उसका उत्तर मिलता है और वातावरण के चेहरे की सारी उदासी और सुस्ती धुल जाती है। वातावरण जाग उठता है। यूँ लगता है जैसे समय की चारपाई पर पड़ी चरित्र-हीन सुन्दरी, जो सारी रात धम्मा-चौकड़ी में डूब रही है बदल कर एक पवित्र देवी बन गई है, जो अङ्गड़ाई लेती है तो तारे लज्जा से मुख छुपा लेते हैं। जो साँस लेती है तो वातावरण सुगन्धित

हो उठता है, जो उठती है तो उसके सुनहरी और रुपहले वस्त्रों की सरसराहट से जीवन की रंगीनियाँ जाग उठती हैं और जो चलती है तो पग-पग पर वातावरण कहता है—"स्वागत, स्वागत !"; और प्रतिदिन यूँ ही होता है।

इसलिए जब रात की चरित्र-हीन सुन्दरी सुबह की देवी के रूप में उठी तो घंटाघर की एक घड़ी ने साढ़े पांच का घंटा बजाया और गोल चक्कर की पूर्वी पटरी से मदन, अख़बार बेचने वाले ने आवाज दी—अखबार···अखबार, ट्रिब्यून, हिन्दुस्तान टाइम्ज़, मिलाप, प्रताप, नयां जमना अखबार !"

घंटाघर की सीढ़ियों पर सोए हुए बे घर, खाना-बदोश बल्कि खाना-बक़फ लोग भी प्रभात-सुन्दरी की सरसराहट सुन कर हिले जैसे शंख फूंका गया हो, परन्तु इतनी सुहावनी प्रलय—इतनी ठंडी और सलौनी प्रलय !

जगदीश अपनी फूलवाली चारपाई पर जरा हिला है—वाक़ई सुबह हुई है, जगदीश हिला है; उसने पतली, अत्यधिक पतली मैली टाँगें एक बार इकट्ठी की हैं, फिर फैला दी हैं। अपनी पीली, अस्वस्थ किचकिची आँखें खोली हैं। सुबह की सुन्दरता, सुबह की शीतलता और सुबह की पवित्रता को सहन न कर सकने के कारण फिर बन्द कर ली हैं—सुबह नहीं हुई है, वह अपने आप से कहता है, "सुबह नहीं हुई है ! यह तो मृगमरीचिका है; धोखा है, अभी तो रात है !" शायद वह स्वप्न देख रहा है, सुबह का स्वप्न देख रहा है—जो उसे नहीं देखना चाहिए। सुबह के स्वप्न देखने का उसे कोई अधिकार नहीं ! सुबह नहीं हुई है। जगदीश ने चादर फिर ऊपर खींच ली है, टाँगें सिकुड़ा ली हैं, आँखें बन्द कर ली हैं।

जगदीश की चारपाई स्वर्गीय सरदार गजराजसिंह की हवेली के सामने सड़क से जरा हट कर, पटरी पर गेट के बिल्कुल पास है—उसके पीछे भारत पब्लिशर्ज़ की दुकान है— जहाँ वह काम करता है—दाएँ

हाथ किशन हलवाई की दुकान है—बाएँ गुप्ता पनवाड़ी है—उसके बिल्कुल सामने सड़क है—जिस पर सारी रात अर्धस्वप्निल ट्रक सिरतोड़ गति से गुज़रते रहते हैं—सड़क को पार करें तो गोल चक्कर मिलता है।

गोल चक्कर, चौक के बिल्कुल मध्य में दस वर्ग गज के क्षेत्रफल में बना हुआ है—चार सड़कें आकर मिलती हैं और आपस में गुत्थम-गुत्था न हो जाए इसलिए यहाँ आकर गोल चक्कर के चारों ओर घूम जाती हैं। सड़कें यदि एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो जाएं तो ट्रैफ़िक असम्भव हो जाये और सम्भव है—बहुत सम्भव है, कोई ट्रक जगदीश और उसकी चारपाई को कुचलता हुआ आगे बढ़ जाए, परन्तु जगदीश एक किनारे पर है और गोल चक्कर के कारण उसकी चारपाई के साथ वाली सड़क पर केवल उत्तर से ट्रैफिक चलता है—जालन्धर और अमृतसर से आने वाले ट्रक चलते हैं—इसलिए जगदीश सुरक्षित है—गोल चक्कर सड़कों को आपस में गुत्थम-गुत्था होने से बचाता है।

गोल चक्कर की पटरियाँ इस समय खाली हैं—दिन में यहाँ विभिन्न प्रकार के लोग बैठते हैं—सुरमा और नयन-काजल बेचने वाले—खुजली की दवाएं बेचने वाले, थके हारे भिखारी, साधू, फ़क़ीर; पालिश और तेल-मालिश वाले लड़के, कान का मैल साफ करने वाले पतले-पतले आदमी, दांत का दर्द ठीक करने वाले और चुटकियों में दांत निकालने वाले—परन्तु इस समय पटरी चारों ओर से खाली है। केवल एक ओर सेंट्रल अनाथालय अमृतसर का दान-पात्र रखा है—बड़ा सा काला बक्स—जिसके ऊपर सिक्के डालने के लिए छेद बना है—इसे ज़ंजीर से बांध कर पीछे एक बोर्ड की टांगों से बांध दिया है—बड़ा सा ताला लगा है—जिसके ऊपर की लाख गल-सड़ कर गिर गई है—अनाथालय का दान-पात्र भी अनाथ है—उसमें कभी किसी ने कोई सिक्का नहीं डाला। उसी ओर केवल थोड़ी सी साधारण जगह पर मदन अखबार-विक्रेता ने अपने अखबारों के गट्ठे रखे हैं। स्वयं कुछ अखबार बगल में दबाये वह

खड़ा है; कभी-कभी एकाध आवाज भी लगा देता है—"अखबार, अखबार···ट्रिब्यून, मिलाप अखबार !"

गोल चक्कर के भीतर अर्थात् ऊपर, कहीं-कहीं घास उगी है। दो टाँगों वाले लम्बे-लम्बे बोर्ड लगे हैं। एक पर पंडित नेहरू की बहुत बड़ी तस्वीर है—केवल चेहरा है—चिंता में मग्न, अंगुली ठोड़ी पर टिकाए, चिरन्तन चिन्तन और जिज्ञासा की रेखाएं लिए पंडित नेहरू का चेहरा दिखाई दे रहा है—साथ लिखा है "पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए नेशनल सेविंग सार्टिफिकेट लीजिए।" इससे जरा हट कर दूसरा बोर्ड है, एक टैंक है जो ऊँची-नीची धरती पर चढ़ रहा है—पास ही एक सुन्दर रोबदार सिख अफ़सर का चेहरा है—साथ लिखा है—"स्थल, जल और वायु-सेना में भरती होकर देश और जाति की सेवा कीजिए।" दोनों बोर्ड उर्दू में हैं। हिन्दी और पंजाबी में लिख भी दें तो कोई नहीं समझेगा, इसलिए दोनों बोर्ड उर्दू में हैं। तीसरा बोर्ड भी सरकारी है। इस पर महात्मा गांधी लाठी टिकाए खड़े हैं—शायद बिहार और नोआखली की पैदल यात्रा की किसी तस्वीर को सामने रखकर यह तस्वीर बनाई गई है। हिन्दी में साफ़ लिखा है, "जिसमें कोई निर्धन न हो, कोई अछूत न हो, वही मेरे स्वप्नों का देश है।" नीचे अंग्रेजी के छोटे अक्षरों में लिखा है "जन-सम्पर्क विभाग पंजाब की ओर से जारी किया गया ! जन-सम्पर्क विभाग पंजाब—महकमा ताल्लुकात"—अर्थात् पंजाब-डिपार्टमैंट आफ़ पब्लिक रिलेशंज़ जो गांधी, नेहरू के नाम पर ही लोगों से सम्पर्क स्थापित किए हुए है।

इन तीन बोर्डों की टांगों से कपड़ा बाँध कर कुछ और विज्ञापन लगे हुए हैं—एक आने वाली फ़्री स्टाइल कुश्तियों का है जिस पर दारासिंह, टाइगर जोगेन्द्रसिंह और 'किंगकांग' के नाम लिखे हैं—दूसरा किसी फ़िल्म का है और तीसरा फट गया है—पढ़ा नहीं जाता—शायद किसी दातुन बेचने वाली ने उसे बीच में से फाड़ कर बच्चे का कुर्ता बना लिया है—या फिर···

सुबह हुई है !

परन्तु किशन हलवाई की दुकान पर नौकर लड़का हरि चार बजे से सुबह का मज़ा चख रहा है। रात वह ग्यारह बजे सोता है और सुबह चार बजे जगा दिया जाता है। उसके लिए दिन का समय-काल सूर्य के उदय तथा अस्त के समय के अनुसार नहीं है। सूर्य कब उदय होता है, उसने कभी नहीं देखा। वह जागता है तो काम पर डट जाता है और उसे पता ही नहीं लगता कि कब सुबह हुई, कब ठण्डी हवा चली, कब मुर्गा बोला, कब सूर्य उदय हुआ और कब ग्राहक आने आरम्भ हुए—यही हाल शाम का है। उसे पता ही नहीं होता कि कब शाम ने रात का रूप बदला, कब सूर्य अस्त हुआ, कब रात पड़ी। वह घंटाघर से समय देखना नहीं जानता। साथ वाले सिनेमा के शो प्रारम्भ होने, इन्टरवल होने और शो समाप्त होने से समय का पता बता सकता है। अन्तिम शो के थोड़ी देर बाद उसे सोने की अनुमति दी जाती है। बारह रुपये मासिक वेतन मिलता है। किशन हलवाई डट कर काम लेता है; कभी-कभी पीटता भी है। हरि का घुटना जला हुआ है। पिछले दिनों इस पर गर्म दूध गिर गया था। घुटना भी जल गया था और उसे मार भी पड़ी थी।

किशन गुण्डा है।

कहते हैं, किशन गुण्डा है—औरतों की दलाली करता है। तभी तो अधिक समय और ध्यान दुकान की ओर नहीं दे पाता। कहते हैं कि जो कमरा उसने अन्दर स्वर्गीय गजराजसिंह की हवेली में किराए पर ले रखा है वह इसी काम आता है। पत्नी को वह कभी नगर नहीं लाया। फिर वे स्त्रियाँ कौन हैं जो कभी-कभी सिग्रेट पीती हुई या बैठ कर चाय पीती हुई उसकी दुकान के भीतर देखी जाती हैं।

साधारणतः रात नौ बजे के बाद यूं होता है कि जगदीश भारत पब्लिशर्ज़ की दुकान बंद होने पर छुट्टी करके इधर आ जाता है। बाहर पड़े बैंच पर बैठ जाता है या अपनी चारपाई ही घसीट कर इधर ले

आता है । चाय बनवाता है और पी रहा होता है कि एक-दो औरतें आ जाती हैं । वे किशन को बुलाती नहीं, हाथ जोड़ कर नमस्ते भी नहीं करतीं; चुपके से आती हैं और जगदीश के साथ ही बैठ जाती हैं । जगदीश सब कुछ जानता है । वह कुछ नहीं कहता । किशन एक बार किसी ग्राहक की चाय बनाता हुआ आँख उठा कर इधर देखता है, फिर सामने खड़े ग्राहक को बातों में उलझा लेता है । "गुंडागर्दी बढ़ गई है । कल अगर मैं न होता तो तीन लफंगे एक उस्तानी को उठाकर ले ही गए होते ।" और फिर वह पूरे विस्तार के साथ एक घटना अपने ग्राहक या ग्राहकों को सुना देता है । किस तरह एक उस्तानी रात की शिफ्ट पर पढ़ाकर वापस आ रही थी कि घंटाघर के पीछे सुनसान स्थान से तीन-चार लफंगे उस पर टूट पड़े । उसकी चीखें यहाँ तक सुनाई दीं और'''वह किस तरह खोंचा उठाकर भागा और जब वहाँ पहुँचा तो क्या देखता है कि''''"

जगदीश अपनी चारपाई पर बैठा अपनी किचकिची, दुर्बल और बीमार मुस्कराहट के साथ अपने साथ बैठी बदसूरत औरतों में से एक को सिग्रेट पेश करके कहता है "किशन आज निवृत्त नहीं हो सकेगा, दुकान पर और कोई नहीं है ।"

सिग्रेट लेती हुई और बीड़ी की तरह उसका एक सिरा तोड़ती हुई उनमें से एक कहती है, "साईं, तुम सुनाओ, तुम्हारा क्या हाल है ?" जगदीश की बुझी हुई हड्डियों की राख में एक लपट उत्पन्न होती है है और गुम हो जाती है । उसका दिल धड़कने लगता है । वह जानता है कि वह कुछ नहीं कर सकता । उसका जी मिचलाने लगता है । कै सी आने लगती है । अपने क्षणिक-रोमांस की गठरी वहीं फेंक वह उठ खड़ा होता है और बड़ी कठिनाई से कहता है, "मैं दुकान पर बैठता हूँ और किशन को भेजता हूँ ।"

किशन हलवाई गुण्डा है, कहते हैं । जगदीश भी कहता है, परन्तु जगदीश शरीफ़ आदमी है । किशन हलवाई हवेली के भीतर अपने कमरे

के बाहर चारपाई बिछाए सो रहा है। चार बजे के लगभग वह उठा था। हरि को ठहोका देकर जगाते हुए उसने काम पर लगा दिया था और स्वयं फिर जाकर सो रहा था। हरि कड़ाहियाँ माँज रहा है। अंगीठी सुलगाने के लिए कोयले तोड़ रहा है। नल से पानी लाकर बड़ा मटका भर रहा है। झाड़-पोंछ कर रहा है और 'ओ३म् जय जगदीश हरे' भी गा रहा है।

सुबह हुई है।

जगदीश ने फिर अपनी आंखें खोली हैं। करवट बदलकर घंटाघर की ओर देखा है। साढ़े पाँच! वह चौंक उठा है तो सचमुच सुबह हो गई? उसे यूँ महसूस हो रहा था जैसे वह केवल कुछ मिनट पूर्व सोया हो। शरीर के जोड़-जोड़ में थकान लहरें ले रही है। रात बारह बजे सो सका था। चारपाई पर बैठा बहार देखता रहा—दो जाट शराबियों की बहार, जो सड़क पर कभी एक ओर लुढ़क जाते तो कभी दूसरी ओर। फिर अपनी ही चारपाई पर बैठे किशन और काली-कलूटी स्त्री की खुसर-फुसर सुनते न जाने कब उसे नींद आ गई। इस समय उसे चाय की आवश्यकता बुरी तरह महसूस हो रही है। जब तक वह चाय पी नहीं लेगा उसके लिए चारपाई पर उठ कर बैठना भी कठिन है। चाय उसका जीवन है "यह तो मेरा पैट्रोल है, मोबल-आइल है"—वह स्वयं सबसे कहता है। जगदीश चाय पियेगा, फिर एक सिग्रेट सुलगाएगा; लेटा रहेगा। छः बज जाएंगे, तब भी लेटा रहेगा। फिर साढ़े छः बजेंगे। सैर पर गए हुए लोग लौटना आरम्भ कर देंगे। मुँह में दातुन लिए बनिये, मोटे-मोटे पेटों पर नीकरें चढ़ाए दुकानदार या बाबू, अधेड़ आयु के अफसर अपनी गर्भवती पत्नियों को साथ लिए, संघ के लड़के लाठियाँ उठाए खटखट करते हुए, पीली आकृति वाले बीमार आदमी बहुत धीरे-धीरे चलते हुए। वह लोगों को सैर से वापस आता देखता रहेगा। किशन हलवाई जाग कर बाहर आ जाएगा। अपने लिए लस्सी बनाएगा तो जगदीश फिर उसे आवाज देगा, "किशन आधी चाह!"

और किशन चौंक कर उसकी ओर देखेगा जैसे उसे जगदीश के अस्तित्व पर विश्वास न आ रहा हो। प्रत्येक सुबह वह इसी प्रकार जगदीश की ओर देखता है और जब विश्वास कर लेता है कि वह जगदीश ही है और अभी जीवित है, जगदीश का भूत नहीं, तो हँसने लगता है। "चाय अभी पी नहीं ?" और हरि कहता है, "एक बार तो पाँच बजे ही पी चुका हूँ। यह दूसरी बार है।" जगदीश ने कभी यह नहीं गिना कि वह दिन में चाय कितनी बार पीता है। दो आने की आधी चाय मिलती है। दिन में यदि वह आठ बार अपनी जेब से पिए तो एक रुपया बनता है। उसका वेतन पैंतालीस रुपए है। फिर भी दिन में आठ आने बचते हैं। खाना वह एक बार खाता है, केवल दो चपातियाँ और दो चपातियाँ चार आने में मिल जाती हैं। साग-सब्जी सहित दो अच्छी बड़ी चपातियाँ, चार आने में मिल जाती हैं। इसलिए जगदीश की चाय एक बार फिर आ जाती है···

साढ़े पाँच बजे हैं। अभी दुकानें खुलनी आरम्भ नहीं हुईं··केवल इक्के-दुक्के लोग कम-से-कम कपड़े पहने आ-जा रहे हैं। मदन के साथ वाले स्थान पर दो-ती·, और अखबार बेचने वाले आ गये हैं। मदन अब वहाँ नहीं है। वह लोगों के घरों में अखबार पहुँचाने गया है। उसका बूढ़ा बाप पटरी पर अखबारों के गट्ठे रखे हुए बैठा है। चौक की बाजार वाली ओर सड़क पर भंगी झाड़ू लगा रहा है। धूल का एक बादल सा उठ रहा है। गुप्ता पनवाड़ी के बिल्कुल साथ मोड़ का कोना पार करें तो जगतसिंह का सतनाम होटल मिलता है। पुराना, बहुत पुराना बोर्ड लगा है। नाम के अतिरिक्त उस पर चाय की प्याली बनी है। सोडा-वाटर की एक बोतल बनी है और लस्सी का गिलास बना है। सतनाम होटल, पूरा होटल नहीं है, केवल चाय, लस्सी और दूध-दही की दुकान है। मालिक जाट है, इसलिए उसे हलवाई कहलाना पसंद नहीं। गांव से नगर आए हुए जाट, दुकान के बाहर अपनी साइकलें ठहराते हैं, लस्सी या चाय पीते हैं और साइकल वहीं छोड़कर

सौदा-सुलफ़ लाने या बेचने के लिए बाजार चले जाते हैं। घंटा, दो घंटा, कुछ समय के बाद लौटते हैं। फिर लस्सी या चाय पीते हैं और थोड़ी देर ठहर कर वापस चले जाते हैं। नगर के विशाल काले रेगिस्तान में जगतसिंह की चाय की दुकान, सतनाम होटल, गाँव की सभ्यता का एक अकेला नखलिस्तान है। गांव के लोगों को नगर के गद्देदार मेज-कुर्सियों से सजे होटल पसंद नहीं। वे तो अपनी सभ्यता जैसा ही वातावरण चाहते हैं। अपने वर्ण, अपने कपड़ों वाला व्यक्ति चाहते हैं। नागरिकों पर उन्हें विश्वास नहीं। कौन जाने, खाने में क्या मिला दें, चाय में क्या डाल दें। इसलिए वे चपातियाँ साथ लाते हैं। खाने के समय पलेट भर दही ले लेते हैं या पाव दूध की चाय बनवा लेते हैं, और जगतसिंह के होटल के भीतर कुर्सी पर आलथी-पालथी मारे बैठकर खा लेते हैं। गर्मियों की दोपहर भी वहीं काटते हैं, सौदा-सलफ वहीं रखते हैं। जाते हुए जगतसिंह को पैसे थमा देते हैं। अपने पीछे आने वाले साथियों के नाम संदेश दे देते हैं और चले जाते हैं। जगतसिंह की आय कम नहीं। काफी कमाई है, फिर भी न जाने उसका हाथ तंग क्यों रहता है?

फिर भी न जाने उसका हाथ तंग क्यों रहता है? उसके पास कोई लड़का पंद्रह दिनों से अधिक नहीं टिक सकता। वह नौकरों को पन्द्रह दिन से अधिक रखने में विश्वास नहीं रखता। उसके बाद वे भेदों से परिचत होना प्रारम्भ कर देते हैं। इसलिए उन्हें निकालना आवश्यक हो जाता है। बिना वेतन दिए या वेतन देने के बाद निकलना आवश्यक हो जाता है। न जाने उसका हाथ तंग क्यों रहता है? कहाँ खर्च करता है वह इतनी आय? कोई नहीं जानता, कोई नहीं जानता··· केवल जगदीश जानता है। जगदीश चौक घंटाघर के प्रत्येक भेद से परिचित है।

वह जानता है परन्तु वह बतायेगा नहीं। यदि वह लोगों के छिपे हुए भेदों को यूं बाजार-बीच ला चौक-बीच खोलना प्रारम्भ कर दे तो

उसकी ढाई पसली कितने दिन चल सकती है। इसलिए वह बतायेगा नहीं। उसकी चौबीस इंच की संक्षिप्त छाती में घंटाघर चौक के सैंकड़ों भेद बन्द हैं···

जगतसिंह के साथ दूसरी दुकान भी उसी के पद-चिन्हों पर चलाने का प्रयत्न किया गया है परन्तु दुकान चल नहीं सकी। मालवा होटल नाम के साथ बोर्ड पर शब्द "काफी हाऊस" लिखकर उसे आधुनिकता प्रदान की गई है। दुकान सफल नहीं हुई। नागरिक ग्राहक मोटे-भोटे जाटों को देखकर यूं ही नहीं जाते और जाट जगतसिंह के लोकप्रिय होटल को कभी नहीं छोड़ सकते। जगतसिंह किसी को नाराज होने का अवसर नहीं देता। इसलिए ग्राहक टूट कर उधर नहीं जाते। मालवा होटल बन्द हो रहा है। अब पिछले कई दिनों से इसके किवाड़ बन्द देखे जाते हैं। सुना है अब यहां कपड़े की एक बड़ी दुकान खुल रही है, इसलिए मालवा होटल बन्द हो रहा है, बल्कि हो चुका है···

साथ ही सीढ़ियां चढ़ती हैं, ऊपर एक चौबारा है, एक बालाखाना है। स्वर्गीय गजराजसिंह की हवेली दो ओर घूमती है। जी० टी० रोड के साथ-साथ किशन हलवाई, बड़ा फ़ाटक, भारत पब्लिशर्ज की ओर गुप्ता पनवाड़ी की दुकानें हैं। यह सब हवेली की इस ओर की बाह्य आकृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। उधर दूसरी ओर बिस्कुटों की इस ओर की दुकान, जगतसिंह का सतनाम होटल, मालवा होटल और एक रिहायशी मकान है। ये बाजार की ओर हवेली की बाह्य आकृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। सतनाम होटल और मालवा होटल की सामान्य छत पर एक चोबारा है, एक बालाखाना है। साथ ही सीढ़ियां चढ़ती हैं।

इस समय ऊपर लोग सोए मिलेंगे। इसलिए जाने का कोई लाभ नहीं। पहली दृष्टि में यह चौबारा लगभग पांच राजनैतिक अर्ध-राजनैतिक और अराजनैतिक संस्थाओं का दफ़तर है। परन्तु वास्तव में बेकार, अर्धराजनैतिक, बेघर नवयुवकों के लिए दिन को बैठकर ताश खेलने और रात को सोने का अड्डा है। इस समय ऊपर सब सोए मिलेंगे।

सुबह हुई है, पौने छः बजे हैं।

जगदीश उठकर बैठ गया है। हरि ने चाय लाकर उसके बिस्तर पर रख दी है। एक छोटी चायदानी और एक प्याली। जगदीश ने सिग्रेट सुलगाया है। उस पर भंगी के झाड़ू से उड़ी धूल धीरे-धीरे बैठ रही है। सुबह की शुद्ध हवा अशुद्ध हो गई है लेकिन उसे कोई परवाह नहीं। वह सामने देख रहा है। दूर चक्कर को पार कर, सड़क के उस पार, पैन और टार्च मरम्मत की दुकानों के पीछे, उसकी दृष्टि मँडला रही है। उसे साफ दिखाई नहीं देता, जो व्यक्ति सरहद्दी-पैन विक्रेता की दुकान की छत पर चढ़ा हुआ है, वह क्या कर रहा है ? दुकान के बिल्कुल पीछे घंटाघर का निचला भाग है। घंटाघर यदि एक वृक्ष हो, तो जगदीश कहेगा, घंटाघर का मोटा तना है। वह आदमी क्या करने लगा है? ध्यान से देखता है और फिर समझ जाता है, धीरे से मुस्कराता है।

घंटाघर का "मोटा तना," पोस्टरों, विज्ञापनों और तस्वीरों से घायल हो रहा है। छोटे-से-छोटा विज्ञापन एक वर्ग फुट और बड़े-से-बड़ा आठ फुट × चार फुट का है। इतने विज्ञापन लगे हैं कि एक बार देखने से सिर घूम जाता है, चक्कर आने लगते हैं। नीचे से आरम्भ होकर घंटाघर की पहली मंजिल तक, जहाँ एक खिड़की है, पोस्टर-ही-पोस्टर हैं। सबसे बड़ा पोस्टर 'आवारा' का है जिसे जब लगाया गया था तो चार आदमी पकड़ कर सीढ़ियों पर एक साथ चढ़े थे। छोटे-छोटे पोस्टर तो अनगिनत ही हैं। घंटाघर के मोटे तने पर पोस्टर लगाना एक सामान्य कार्य सा बन गया है। "यहाँ इश्तिहार लगाना वर्जित है" के छोटे तख्तों के ऊपर पोस्टरों की इतनी तहें चढ़ गई हैं कि उसका अस्तित्व ही छिप गया है। सुबह के समय दुकानें बंद हैं, गर्मी भी नहीं है। इसलिए पोस्टर लगाने का सबसे उचित समय यही हो सकता है। जो व्यक्ति सरहद्दी-पैन विक्रेता की दुकान पर चढ़ा है, वह पोस्टर को बिछाकर उसकी पीठ पर गूंद लगा रहा है; फिर तीन-चार आदमी उसे एक साथ उठायेंगे और बांसों पर लगे हुए रोलर से एक बार ही घंटाघर

के मोटे तने पर चिपका देंगे। न जाने कितने छोटे विज्ञापन इसके नीचे दब जायेंगे, कितनी पुरानी फ़िल्मों के चिन्ह घंटाघर की खाल पर सदा के लिए लुप्त हो जाएंगे। अभी तो वह गूंद ही लगा रहा है।

"हरि, ओ हरि, देख, शायद 'मदर इंडिया' का पोस्टर लग रहा है।" जगदीश उठकर बैठ गया है। उसने दरी और तकिये का छोटा-सा बिस्तर लपेट कर पांयतों रख लिया है और बैठ गया है। उसके पास ही पालिश का सामान लिए एक लड़का आ बैठा है। गुप्ता पनवाड़ी का 'भैय्या' नौकर दुकान खोलने आ गया है। दुकान खोलने से पहले वह उसके पास ही बैठकर नाली में पेशाब कर रहा है। उठकर वह दुकान खोलेगा। पीतल के बर्तन में ताजा पानी भरेगा। फिर टोकरी खोलकर पान के पत्ते इसमें डाल देगा। बिजली का सिग्रेट लाइटर बाहर लटका देगा। भीतर झाड़ू देगा। खाली डिब्बयाँ एक ओर पड़े टीन में डाल देगा। सिग्रेट जोड़कर रखेगा। थोड़ी सी सुपारी काटेगा और फिर जगदीश को वहीं बैठे छोड़कर भीतर हवेली में नल पर नहाने चला जायेगा।

रामविलास की अपनी भी दुकान थी!

बहुत, बहुत दिन बीते, यू० पी० के किसी नगर में रामविलास की अपनी दुकान थी। पानों की, सिग्रेट, बीड़ी की बड़ी अच्छी दुकान थी। परन्तु आज वह पंजाब के इस नगर में एक पंजाबी पनवाड़ी के पास नौकर है। छालियाँ कुतरता है। अंगीठी पर पतीला चढ़ाकर कत्था बनाते हुए देखा जाता है। थोड़ी सी तन्ख्वाह लेता है और बस—आखिर रहस्य क्या है? जगदीश जानता है—गुप्ता पनवाड़ी जानता है। सभी जानते हैं। बहुत बहुत दिन बीते, जहाँ रामबिलास की अपनी दुकान थी, वहाँ उसकी दुकान के साथ ही एक घर था। ये लोग उसकी जात-बिरादरी के नहीं थे। उनकी एक लड़की थी—कौशल्या—साँवली सी, बड़ी सुन्दर नवयुवती। रामबिलास ने उसे देखा और उसने रामबिलास को देखा, और जब दोनों ने एक-दूसरे को देखा तो उन्हें संसार की ओर

देखने की सुध-बुध ही न रही। परन्तु संसार यह कब सहन कर सकता है कि परायी बिरादरी के लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे की ओर इस प्रकार देखें कि उन्हें संसार भूल ही जाए। इसलिए बात बढ़ गई। रामबिलास को यह डर उत्पन्न होगया कि उसकी दुकान को लूटने और आग लगाने के अतिरिक्त वे उसे टकुवों से मार भी डालेंगे। इसलिए उसने चुपके से एक दिन दुकान का सारा सामान बेच दिया। एक सप्ताह छुपा रहा और फिर एक दिन दाव लगने पर उसे साथ लिए यहाँ आ गया। आकर दो-चार मास बेकार ही एक मकान से दूसरे और दूसरे से तीसरे में घूमता रहा, परन्तु जब संचित पूंजी समाप्त हो गई तो नौकरी करनी पड़ी।

और अब रामबिलास जब नहा कर आएगा तो गुप्ता की दुकान सजा देगा—गुप्ता की यह दुकान सफल बनाने में उसका बहुत बड़ा हाथ है। गुप्ता तो पश्चिमी पंजाब के एक साधारण से गाँव से लुट-पिट कर यहाँ आया था। और उसे पासिंग शो और डीलक्स टेनर की सिग्रेटों में अन्तर का भी ज्ञान नहीं था। उसे पता तक नहीं था कि सादा पान किसे कहते हैं, सुरती क्या होती है, मुरादाबादी और उज्जैनी तम्बाकू में क्या अंतर है, या पान के पत्ते आते कहाँ से हैं ? इसलिए गुप्ता की दुकान को सफल करने का श्रेय उसी को है।

गुप्ता साढ़े सात बजे के समीप आयेगा। नाटा सा, मुट्ठी-भर शरीर और संक्षिप्त शब्दों का गोरा-सा व्यक्ति जिसकी आयु तीस से पैंतालीस तक कुछ भी हो सकती है। मलमल का झीना कुर्त्ता, पायजामा और चप्पल—पहली दृष्टि में वह पनवाड़ी बिल्कुल दिखाई नहीं देता, कलाकार लगता है। गोरे, लाल चेहरे पर एक रहस्यमयी मुस्कराहट लिए यहाँ आयेगा तो उसके लिए गुड़गुड़ी ताजा रखी होगी—वह आकर गद्दी पर बैठ जाएगा। दुकान खुली है, काम तैयार है। वह कुछ मिनटों तक चुपचाप बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता रहेगा, सोचता रहेगा—"एक-दो डोगरी के रुपये ? ऊहँ, वह क्या कर लेगा ?" वह सोचता रहेगा और पानों पर चूना-कत्था लगाता रहेगा। एक-दो डोगरी उसका कुछ नहीं

बिगाड़ सकता। इसलिए कि वह भिखारी मात्र है। और भिखारी का कोई घरबार नहीं होता, कोई अधिकार नहीं होता। यदि उसने पैसा-पैसा जोड़ कर डेढ़-दो सौ रुपये गुप्ता के पास जमा करवाए हैं और गुप्ता उन्हें वापस न भी दे तो क्या अन्तर पड़ता है ? और फिर एक-दो डोगरी ने कौनसा रक्त-पसीना एक करके रुपए कमाए हैं! साला, लोगों से छीन कर तो भीख लेता है। यदि गुप्ता ये रुपए डकार गया तो कौन-सा गजब हो जाएगा। इन्हीं दिनों तो उसने नया मकान बनवाया है। हाँ; अलबत्ता पार्वती के रुपये···

पार्वती का ध्यान आते ही एक बार गुप्ता चौंक-सा जाएगा। वह बैठे-बैठे सिकुड़ जाएगा। उसके चेहरे पर एक क्षण के लिए भावनाएँ गडमड हो जाएंगी। एक ओर नैतिकता, प्यार और कर्त्तव्य की भावनाएं और दूसरी ओर कारोबार, पैसा और स्वार्थ की भावनाएं। उसके मानस में संघर्ष-सा होगा······पार्वती !

गुप्ता को याद है, जब वह पहली बार गंगा-स्नान के लिए हरिद्वार गया था। उसकी पत्नी साथ थी और पहला बच्चा भी जो हजारों गंडे, तावीज और लाखों मनौतियों के बाद पैदा हुआ था। गंगा पर भी वे अपनी मनौती पूरी करने ही गए थे। धर्मशाला के जिस कमरे में वे ठहरे थे, उसके साथ वाले कमरे में पार्वती ठहरी थी। पैंतीस वर्ष की, समय के पूर्व अधेड़ दिखाई देने वाली पार्वती, जो किसी स्कूल में अध्यापिका थी और गर्मी की छुट्टियों में हरिद्वार चली आई थी, वह उनसे मिली और मिलते ही उसकी पत्नी की पक्की सहेली बन गई। ऋषिकेश, लछमन झूला, जिस स्थान पर भी वे गए, इकट्ठे ही गए। दो-तीन दिनों में ही गुप्ता ने अनुभव किया कि पार्वती का जीवन एक भूख ने अजीर्ण बना रखा है। पार्वती को समय से पूर्व अधेड़ भी इसी भूख ने ही बना दिया है—गुप्ता को यह भूख नहीं थी। उसके विवाह को बारह वर्ष हो चुके थे और उसकी पत्नी भी साथ थी परन्तु पार्वती को यह भूख थी और उसका पति साथ नहीं था। पति था ही नहीं—इसलिए

पार्वती पिछले आठ वर्षों से इस भूख को दबाए हुए थी। गुप्ता ने स्वयं भी बचने की कोई चेष्टा नहीं की और यद्यपि तीसरे दिन की सुबह को वे हर की पौड़ी पर गंगाजल हाथ में लेकर गंगा भाई-बहिन बने थे और यद्यपि गुप्ता यह चाहता भी नहीं था और ऐसा करना पाप भी था परन्तु...

परन्तु ऐसा हुआ।

गुप्ता को अब भी अच्छी तरह याद है। रात थी। जिस कमरे में वे थे, वह बिल्कुल छोटा-सा था। फर्श पर दरी बिछाए वे दोनों सो रहे थे। पार्वती अभी-अभी उठकर अपने कमरे में गई थी। वह जागता रहा था। जिस टाँग पर पार्वती ने अपना हाथ रखकर सहलाया था, वह जल रही थी। उसके शरीर में भूख जागृत हो गई थी। उसने करवट बदलकर बच्चे को उठाकर एक कोने में कर दिया और अपनी पत्नी कौशल्या के समीप हो गया। कौशल्या बेसुध सो रही थी। उसने उसे अपनी भुजाओं में लिया। गर्मी और कोमलता उसके मस्तिष्क पर बादलों की तरह छा गई परन्तु कौशल्या ने अपने आपको छुड़ा लिया। "नहीं जी, गंगा जी पर ऐसा पाप !" और करवट बदलकर सो गई। गुप्ता जल रहा था। वह उठा, बाहर निकला। जिस छत पर वे थे उस पर पीपल की टहनियाँ झुक आई थीं। चाँदनी पत्तों से छन-छन कर आ रही थी और पार्वती के छोटे कमरे का दरवाजा खुला था......

गुप्ता की पत्नी को अब भी संदेह नहीं है। गुप्ता और पार्वती गंगा पर भाई-बहिन बने हैं। उसकी पत्नी को संदेह कैसे हो सकता है ? और वह पार्वती, जो पिछले दिनों एक मासके लिए देहरादून गई थी और लौटी थी तो टाइफाइड से उसका चेहरा सूख गया था। तो यह कोई विशेष बात नहीं थी—परन्तु चौक घंटाघर के प्रत्येक व्यक्ति को संदेह है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वह मोटी-सी अधेड़ आयु की अध्यापिका, छोटी-सी छतरी उठाए, पतली मलमल की साड़ी बाँधे, प्रतिदिन गुप्ता की दुकान पर आती है। ग्राहकों की तरह पास ठहर कर धीरे-

धीरे बातें करती रहती है, कभी दस मिनट, कभी पंद्रह मिनट, कभी आधा घंटा, खड़ी ही रहती है। कभी-कभी गुप्ता उठकर उसके साथ-साथ चल पड़ता है। कभी नहीं जाता और कुछ देर बातें करने के बाद वह स्वयं ही चली जाती है। चौक घंटाघर का प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि गुप्ता उससे आठ-नौ सौ रुपया ले चुका है। बिस्कुटों की दुकान खोलने के बहाने, कभी ठंडे पानी की मशीन लगाने के बहाने से सैंकड़ों रुपये ऐंठ चुका है। उस बेचारी की सारे जीवन की संचित पूँजी यही थी। अब वह भी समझ गई है। और जब आती है, दस-पंद्रह रुपये वापस ले जाती है, परन्तु दस-पंद्रह रुपयों से क्या बनता है? अधिक-से-अधिक सौ-दो सौ वापिस ले लेगी। और फिर गुप्ता जानता है कि अभी पार्वती में रस है। जब अपनी पत्नी मायके गई हुई हो, या गर्भवती हो, तो······परन्तु गुप्ता अल्प भाषी है। वह किसी से ऐसी बात नहीं करता। यदि कोई उससे पूछे तो वह कह देता है, "अपनी रिश्तेदार है। बेचारी मुसीबत में है। कुछ रुपये माँगने आई थी।" इससे अधिक वह कुछ नहीं कहता, परन्तु जानने वाले जानते हैं।

अभी साढ़े सात बजेंगे तो गुप्ता आयेगा। फिर घंटाघर की सुबह आरम्भ होगी। परन्तु अभी तो बहुत समय है, बहुत समय है। क्षण बालू के कण हैं जो एक-एक करके गिर रहे हैं। गिरते ही जा रहे हैं। बालू की मुट्ठी अभी भरी हुई है। धीरे-धीरे समय बीत रहा है।

जहाँ जगदीश की चारपाई है वहाँ एक टूरिस्ट कार आकर रुकी है। लम्बी-सी बड़ी सुन्दर, नया माडल की कार। शायद अमृतसर से आ रही है। पीछे पाकिस्तान से आई होगी। भीतर दो स्त्रियाँ हैं और तीन पुरुष। सभी योरुपीयन हैं या अमरीकन हैं। विचित्र प्रकार के कपड़े पहने हुए हैं। जगदीश चारपाई पर बैठा एकटक उनको देख रहा है। कार रुक गई है। इंजन बंद हो गया है और वह आपस में कुछ बातें कर रहे हैं। अंग्रेजी नहीं है, कुछ दूसरी ही भाषा है। जगदीश जानता है कि केवल पाकिस्तान के निवासियों के इधर आने पर और इधर के

निवासियों के उधर जाने पर ही प्रतिबंध है। ये योरुपीयन या अमरीकन जिस देश में चाहें जा सकते हैं। जिस सीमा को चाहें पार कर सकते हैं। अब पाकिस्तान से आ रहे हैं। पीछे पता नहीं ईरान से आ रहे हों। शायद कार पर संसार का भ्रमण करने निकले हों। उन्हें कोई नहीं टोकता। और पिछले दिनों जो अखबार में लिखा था कि ये लोग सेरों सोना अपनी कारों में छिपा कर लाते हैं। शायद इस कार के किसी कोष्ठक में ही मन-दो-मन सोना छिपा हो। अपना मार्ग-व्यय तो ये लोग इसी तरह ही निकालते होंगे। अन्यथा किसी को क्या पड़ी है कि घर से व्यर्थ ही संसार का भ्रमण करने के लिए निकल पड़े? इतना रुपया किसी के पास हो भी कैसे सकता है? जगदीश तो एक पैकर है। केवल पैंतालीस रुपये वेतन लेता है और यहाँ से आगे चलकर दिल्ली तक नहीं जा सका। कार रुक गई है और अब एक लम्बा—चौड़ा, गोरा-अत्यधिक गोरा मनुष्य कार का दरवाजा खोलकर बाहर निकला है। उसने हवा को सूंघा है। जैसे कोई शून्य-यान किसी नए ग्रह पर उतरे और पहला मनुष्य बाहर निकल कर हवा में सूंघ कर देखे कि भला इस हवा में मनुष्य जीवित भी रह सकता है या नहीं? उसने हवा को सूंघा है। दायें-बायें देखा है। अंग्रेजी में लिखे, दायें-बायें कुछ साइनबोर्ड पढ़े हैं। फिर जेब से तह किया हुआ एक नक्शा निकाला है। दो-तीन छोकरे इधर-उधर कुछ दूरी पर रुक गए हैं और बड़ी दिलचस्पी से कार को देख रहे हैं। हरि भी काम छोड़कर इधर देख रहा है—नक्शा खोलकर उसने उंगली से कुछ देखा है। फिर कार में बैठे हुए पुरुषों और स्त्रियों को दिखाया है। एक स्त्री जोर से हँसी है और दरवाजा खोलकर बाहर निकल आई है। वे दोनों कुछ आगे बढ़े हैं। जगदीश की चारपाई के समीप आकर रुक गए हैं। आस-पास दुकानें बन्द हैं। स्त्री जगदीश की दुर्बल, अत्यधिक दुर्बल, आकृति को देखकर फिर जोर से हँसी है। जगदीश काँपने लगा है। उसका दिल तेजी से धड़कने लगा है और बहुत सम्भव है, वह बेहोश हो जाता,—परन्तु वे दोनों उसे छोड़

तनिक आगे बढ़ गए हैं। जगदीश के प्राणों-में-प्राण आए हैं।

वे जानता है, कि आगे उन्हें विंडसर होटल का साइनबोर्ड दिखाई दे जाएगा। कार को आगे बढ़ाकर ये वहाँ ले जायेंगे और सारा दिन होटल में सोते रहेंगे। पंखे के सामने बर्फ़ की सिलें रखकर उनके कमरों में कृत्रिम शीतलता उत्पन्न की जाएगी। ये शीतल देशों के निवासी दिन के समय कार में सफर भी नहीं कर सकते। रात को सफ़र करते हैं और सुबह-सुबह ही किसी नगर में पहुँच कर ठहर जाते हैं। अब सारा दिन ये वहाँ होटल में रहेंगे। बीयर की पन्द्रह-बीस बोतलें पीयेंगे। शाम को बाजार की सैर करेंगे। कुछ खरीदेंगे और फिर रात के समय चल पड़ेंगे। अब वे दोनों लौट रहे हैं। उन्होंने होटल का साइनबोर्ड देख लिया है। गोरी सुन्दर ब्रांड स्त्री ने अपने सिर के सुनहरी बालों को झटका देकर फिर जगदीश की ओर देखा है और फिर जोर से हँसी है। अकाली जी अखबार लिऐ इस ओर भागते आ रहे हैं। लीजिए, वे आगए और कार वालों ने तीन-चार अंग्रेजी अखबार खरीद लिए। कार फिर स्टार्ट हो रही है। कार का रेडियो लगा दिया गया है और एक विचित्र प्रकार की धुन सुनाई दे रही है। कार बिना शब्द किए फिर जगदीश की चारपाई के पास से निकली है। स्त्री की मुक्त हँसी फिर सुनाई दे रही है।

जगदीश की चारपाई के पीछे स्वर्गीय सरदार गजराजसिंह की हवेली का बड़ा फाटक है। फाटक में प्रविष्ट हों तो दाएं ओर भारत पब्लिशर्ज़ की सीढ़ियाँ हैं, जहाँ जगदीश काम करता है। बाहर किताबों के शो केस लगे है। अन्दर दुकान है। दो बड़े कमरों वाली दुकान है, जिसके दो दरवाजे बड़ी ड्योढ़ी में खुलते हैं। बाएं हाथ सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ती हैं तो बड़ी हवेली के उस भाग तक जा पहुँचती हैं जिसमें स्वर्गीय टोडी सरदार की दूसरी विधवा चन्द्रकौर रहती है—चन्द्रकौर केवल एक छोटे से कमरे में रहती है। शेष सभी कमरे उसने किराए पर चढ़ा रखे हैं। सौ-डेढ़ सौ रुपया मासिक किरा।

ही चन्द्रकौर की जीविका का साधन है। अपने जीवन तक उसका हवेली के इस भाग पर अधिकार है। इसके बाद सब सम्पत्ति सरकार की है। स्वर्गीय सरदार निस्संतान मर गया था और हवेली के इतने दावेदार हैं कि.......

भारत पब्लिशर्ज़ का मालिक गुरमुख सिंह भी चंद्रकौर का किरायेदार है। सौ रुपया मासिक किराया देता है और साठ रुपये की रसीद लेता है। इसलिए चन्द्रकौर उसके मासूम मज़ाक और चलते वाक्यों का बुरा नहीं मानती। उसे अपना बेटा समझती है।

चन्द्रकौर उसे अपना बेटा समझती है, क्योंकि चन्द्रकौर के पास उसे देने के लिए कुछ भी नहीं है। यदि उसके पास अपनी सम्पत्ति होती या स्वर्गीय सरदार की सम्पत्ति पर ही उसका कुछ अधिकार होता तो वह यूँ सरलता से उसे अपना बेटा न बनाती। परन्तु अब उसके पास देने को कुछ भी नहीं है और लेने को सब कुछ है। गुरमुखसिंह की कोठी से उसे सब्जियाँ भी आ जाती हैं। कभी-कभी जब वह नीचे आकर दुकान पर बैठ जाती है तो उसे पीने के लिए एक कप चाय भी मिल जाती है। दो-चार मजाक, दो-चार लाड़ और दुलार भरे वाक्य और अपना किराया पेशगी ही प्राप्त कर लेती है। बूढ़ी, अत्यधिक बूढ़ी, बीमार, हरी आँखों और मैले-कुचैले कपड़ों वाली बूढ़ी। न जाने स्वर्गीय सरदार ने उसमें क्या देखा था जो दूसरे विवाह के लिए पसंद कर लिया था।

गुरमुखसिंह पूछता है, "बेबे, स्वर्गीय सरदार को तुममें क्या वस्तु दिखाई पड़ गई थी, जो माता सरदूलकौर के बाद तुमसे ही शादी रचा ली थी ?"

"वे पुत्त......" बूढ़ी कहती है "क्यों गड़े मुर्दे उखेड़ता है ? सरदार की आत्मा को गुरु शांति दे। मुझ में क्या चीज कम थी ? मैं किस बात में सरदूलकौर से कम थी ? उससे दस बरस छोटी भी तो हूँ......"

"और······" गुरुमुखसिंह फिर छेड़ते हुए कहता है "······माता सरदूलकौर के मूँछें भी नहीं हैं और मेरी तो गुरु की कृपा से मूँछें भी हैं और दाढ़ी के कुछ बाल भी !"

बूढ़ी अपनी खूँटी उठाकर कृत्रिम क्रोध से धरती पर पटकती है। एक बार कुर्सी पर उठ खड़ी होती है। अपने मैले दुपट्टे से अपनी दाढ़ी के बाल छिपाने की कोशिश करती है परन्तु फिर बैठ जाती है, क्योंकि गुरुमुखसिंह से किराया पेशगी लेना है; "वे पुत्त······क्यों मसखरी करता है ?" वह फिर कहती है।

जब सरदूलकौर की कोख से एक मरी हुई चुहिया भी उत्पन्न न हुई और सारी सम्पत्ति और जमीन का उत्तराधिकारी बनाना आवश्यक हो गया तो आज से चालीस वर्ष पूर्व, स्वर्गीय महाराजा पटियाला के स्वर्गीय दरबारी सरदार गजराजसिंह ने चाहा कि वह दूसरी शादी कर ले। उसे यह विचार न आया कि उसमें सरदूलकौर का अपराध केवल ना के बराबर है। स्वयं जब पटियाला की औरतों की मंडी से और महाराजा के अन्तःपुर से उसे कुछ-न-कुछ भाग मिलता रहता था और यह भाग इतना काफी था कि खा-पी कर भी उसके पास बहुत-सा बच रहता था। तो उसे कभी विचार ही न आया कि जो उत्तराधिकार वह यहाँ नष्ट कर रहा है, वह उसे सरदूलकौर पर नष्ट करना चाहिए। विलायत से आविष्कृत होकर आई हुई नयी-नयी बिजली की पेटियों, हारमोन की दवाइयों और न जाने क्या अला-बला प्रयुक्त करने के बाद भी जब कुछ न हुआ, तो अपराध सरदूल-कौर के सिर पर मढ़ा गया।

नगर में सम्पत्ति थी। इतनी बड़ी हवेली थी कि जो साहब बाहर से आता, उसे यहाँ ही ठहराया जाता। इन कमरों में, जहाँ अब राख उड़ती रहती है, झाड़-फानूस और बिजली की साज-सज्जा उपस्थित रहती थी। गाँव में जमीन थी। पूरा गाँव ही अपनी जागीर था। इतनी गेहूँ होती थी, इतने चने होते थे, इतना गन्ना होता था कि

कि घर भर जाते थे। और गजराजसिंह या तो नगर में रहते थे या फिर पटियाला में·······

और फिर स्वर्गीय विलासी महाराजा इस प्रकार मर गया कि सरदार गजराजसिंह को दुःख या प्रसन्नता के विषय में सोचने का अवसर तक न मिला। बाहर के, और भीतर के महलों में रहने वाली चार-पाँच सौ स्त्रियाँ भी स्वर्गीय महाराजा के मरने के साथ अनाथ हो गईं। कुँवर ने उन्हें निकाल बाहर किया। और फिर सरदारों की ऐश थी—जिसे जो पसंद थी, वह उसे अपने साथ अपनी जागीर में ले गया। एक सप्ताह के भीतर-ही-भीतर, पटियाला के स्वामिभक्त सरदार स्वर्गीय महाराजा का अन्तःपुर खाली कर गए—गजराजसिंह के हाथ भी कुछ लगा। कुछ दिन उसने जी बहलाया। परन्तु उसे तो अन्दर-ही-अन्दर यह घुन खाये जा रहा था कि सम्पत्ति और जागीर का उत्तराधिकारी पैदा हो। अन्तःपुर की दासियों में एक दिल्ली की वेश्या थी, जो स्वर्गीय महाराजा की वासना पूरी करते-करते स्वयं बूढ़ी हो गई थी। उसके पास एक लड़की थी। उसकी अपनी भतीजी, जो वेश्या की संतान होते हुए भी किसी सिख सरदार के वीर्य से थी। उसने वह पेश कर दी। सरदार ने उसे देखा तो उसपर लट्टू हो गया। सरदूलकौर से पूर्व वह तीन विवाह कर चुका था। एक शादी बचपन की शादी थी, जिसे उसने होश सम्भालते ही छोड़ दिया था। दूसरी, शादी के एक वर्ष बाद ही मर गई थी। तीसरी भी कुछ देर उसके साथ रही थी परन्तु बाद में उसे छोड़ दिया गया था। सारदूलकौर चौथी थी और अब चांद-सी प्यारी दुलहन, चन्द्रकौर, पाँचवीं थी।

गुरमुखसिंह ही नहीं, दुकान का प्रत्येक व्यक्ति बूढ़ी चन्द्रकौर से मज़ाक करना अपना अधिकार समझता है। बूढ़ी बुरा नहीं मानती। उसे अपनी वास्तविकता का ज्ञान है और वह यह भी जानती है कि कुछ और लोग भी उसकी यह वास्तविकता जानते हैं।

बूढ़ी दुकान पर आ बैठती है तो जगदीश धीरे से माथे पर हाथ

मार कर कहता है, "अब यदि कोई ग्राहक दुकान पर आ गया तो कहना !"

"वे कुत्तया !" बूढ़ी कहती है, "मां से मज़ाक करते शर्म नहीं आती ?"

"नहीं माताजी......" जगदीश फिर कहता है, "जब आप आती हैं तो कोई ग्राहक दूकान पर आता ही नहीं। पता नहीं बात क्या है ?"

बूढ़ी जानती है कि जगदीश के बिना उसका निर्वाह नहीं। जगदीश उसके सैकड़ों काम करता है। बूढ़ी ने कभी ईंधन नहीं मोल लिया। जगदीश जो कागज दुकान से निकालता है, बोरी भरकर बूढ़ी को दे देता है। इसलिए वह जगदीश की किसी बात पर नाराज़ नहीं होती।

जगदीश फिर कहता है, "मां के बस में हो तो सारी हवेली उठाकर अपने गांव भेज दे। अपने भांजे-भांजियों के लिए !"

सभी जानते हैं कि हवेली पर उसे केवल आयु भर अधिकार है। हवेली का सभी फर्नीचर, पर्दे, खूबसूरत दरवाजे, संदूकचियाँ, यहाँ तक कि साधारण वस्तुएं भी धीरे-धीरे उसके गांव पहुँच चुकी हैं, जहाँ उसकी बहिन के पुत्र-पुत्रियाँ अब पूरे जाटों की तरह जीवन बिता रहे हैं। वेश्यापन कब का विस्मृत किया जा चुका है। इसलिए यदि उसे जग-हँसाई का कुछ भय न हो तो वह हवेली के सभी दरवाजे उतरवाकर भी बेच डाले और रुपया गाँव भेज दे।

और अब चांद से प्यारी पाँचवीं दुलहन चन्द्रकौर !

पहले वर्ष वे शिमला गए। चैल के डाक-बंगले में ठहरे। तीन-चार नौकर-चाकर साथ थे। चन्द्रकौर अठारह वर्ष की वेश्या-पुत्री, चढ़ती जवानी-नाज़ नखरे और गजराजसिंह चालीस वर्ष का विलासी जागीरदार, जिसके शरीर में सिवाय जागीरदारी रक्त के और कुछ नहीं था। इसलिए जब वे लौटकर आए, तो कुछ नहीं था, कुछ भी नहीं था—एक बरस और गुजरा।

अगली गर्मियों में वे कश्मीर गए। श्रीनगर, डल, गुलमार्ग···चन्द्रकौर उन्नीस वर्ष की सुघड़ सयानी, सरदारनी, जागीरदानी—अलबत्ता अनपढ़, मूर्ख और गजराजसिंह इकतालीस वर्ष का बूढ़ा जागीरदार। जब वे कश्मीर से छः मास बाद लौटे तो एक बेटा साथ लाए। तीन मास का बेटा, चांद-सा सुन्दर जागीरदार बेटा। परन्तु देखने वाले कहते, धीरे से धीमे-धीमे कहते। ऊँचे-ऊँचे लोगों को सुनाकर कहते कि, "ये जब कश्मीर गए थे तो सरदारनी सपाट थी, बिल्कुल सपाट। और अब यह तीन मास का बच्चा, लाल और श्वेत बच्चा, कहीं कश्मीरी न हो ? कश्मीर में जो उत्पन्न हुआ था ?" सारी सम्पत्ति और जमीन-जायदाद का उत्तराधिकारी पैदा हो गया तो जागीर के चारों ओर हर्ष मनाया गया।

दिन बीतते गए। चन्द्रकौर बरसों में ही अधेड़ हो गई। सरदार गजराजसिंह का जी उकता गया, परन्तु चूंकि उसने विधिवत् विवाह किया था, इसलिए छोड़ भी न सकता था। गंदगी और अज्ञान के वातावरण में पली हुई अनाथ वेश्या-पुत्री फिर अपने निजी और वास्तविक रूप की ओर लौट आई। घर में रुपया है, धन है, बीसियों नौकर हैं परन्तु कपड़े गंदे हैं। सिर में तेल थोंपा है तो कंघी नहीं की है। बिस्तर की चादरें साफ नहीं हैं। हर जगह थूक और गंदगी है। इसलिए गजराजसिंह का जी उकता गया और वह फिर स्वभावानुसार सरदूलकौर की ओर लौट गया, जिसके घर में गंदगी नहीं थी, सफाई थी। इज्जत और सम्मान का वातावरण था। सामंतवादी वातावरण था और वहाँ बूढ़ी सरदानी बिल्कुल सरदारनियों की तरह ही जीवन बिता रही थी। गजराजसिंह बुद्धिमान था। जमीन और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी एक अंग्रेजी स्कूल में भेज दिया गया था। जब वह जवान होकर निकलेगा तो विलायत भेजा जाएगा। अपने बाप का उत्तराधिकारी विलायत से लौटेगा तो नए महाराजा के पास कोई बड़ा पद सँभाल लेगा ! परन्तु

उसके जवान होने से पूर्व ही गजराजसिंह मर गया और दो विधवाएँ छोड़ गया...

हवेली के भीतर दूर आंगन में पार्टी के दफ्तर के पास एक बेरी है। हर दो-तीन बरसों के बाद जब यह बड़ी हो जाती है तो चन्द्रकौर इसकी टहनियाँ कटवा डालती है और ईंधन आंगन के एक कोने में सूखने के लिए डाल दिया जाता है। हर दूसरे बरस यह बेरी फिर बड़ी हो जाती है—गुरमुखसिंह कहता, "बेबे, तुम्हारे दाह के लिए तो यह बेरीही काफी है। और लकड़ी मंगवाने की जरूरत नहीं।"

चन्द्रकौर लाठी पटक कर उठ खड़ी होती है। वह सचमुच वास्तविक अर्थों में नाराज हो गई है, "ओ ए बेईमाना!" अपने मरने की बात उसे पसन्द नहीं। अपनी मृत्यु के विषय में वह सोच भी नहीं सकती। यदि वह मर जाए तो उसके निर्धन भांजे भांजियों का क्या होगा? सरदारों के कुल में उसे पूछने वाला ही कोई नहीं। सभी उससे घृणा करते हैं। इसलिए उसे मरने की बात पसंद नहीं। "ओ ए बेईमाना!" वह फिर कहती है, "अपनी मां से यह बात कहो, तो पता चले।"

"क्या तुम मेरी मां नहीं हो?" गुरमुखसिंह फिर कहता है।

"तो क्या लोग माताओं से इस तरह बातें करते हैं? शर्म करो! यह बात मुझसे न किया करो! हजार बार कह चुकी हूँ।"

. "परन्तु मां..." गुरमुखसिंह के चेहरे पर शरारती मुस्कराहट है, "माता सरदूलकौर तो चाहती है कि तुम मरो तो वह घी के दिए जलाये, मिठाइयाँ बांटे!"

गुरमुखसिंह ने चन्द्रकौर की रुचि के अनुकूल विषय छेड़ दिया है। अब चन्द्रकौर घंटों इस बात को लेकर बातें करती रहेगी। सौतिया डाह! उसे सरदूलकौर से अकारण बैर है, सरदूलकौर ने शायद कभी उसके बारे में नहीं सोचा। वह हवेली के आधे भीतरी भाग में सम्मान और गर्व से रहती है। जागीरदारनी कहलाती है। आयु अस्सी वर्ष की होने लगी है परन्तु अब भी उसके चेहरे पर एक प्रकार की आभा है,

रोब है। वह चंद्रकौर को एक अपरिचित व्यक्ति-सा भी महत्व नहीं देती। परन्तु चंद्रकौर उसकी सौत है, इसलिए वह घंटों गुरमुखसिंह से ये बातें करती रहती है।

जब वह जवान होकर निकलेगा तो विलायत भेजा जाएगा। अपने पिता का उत्तराधिकारी विलायत से लौटेगा तो नए महाराजा के पास कोई बड़ा पद संभाल लेगा—परन्तु जब वह जवान होकर निकला तो सुन्दर युवक था। सिर पर पटियाला-शाही पगड़ी क्षीरन कमानी वाली ऐनक, जागीरदाराना बेटा। विलायत नहीं गया परन्तु पटियाला और लाहौर के क्षेत्रों में बहुत लोक-प्रिय हुआ। एक शादी की, लव मैरिज ! एक सुन्दर दोहरे शरीर की, ऊँचे कुल की लड़की से शादी की। लड़की नये फैशन की थी। अलग रहना चाहती थी। इसलिए अलग कोठी बनी। गजराजसिंह की वसीयत के अनुसार दोनों विधवाओं के बाद लड़का सारी सम्पत्ति का स्वामी था। दिन गुजरते गए परन्तु विवाह के एक वर्ष बाद जमीन और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी चुपके से मर गया।

मर गया तो कहने वालों ने कहा। धीरे से आहिस्ता-आहिस्ता कहा, ऊँचे ऊँचे लोगों को सुना कर कहा "इसे जहर दी गई है। पत्नी विलासिनी थी। अपने यारों से मिलती रहती थी!" जांच भी हुई परन्तु व्यर्थ—हाँ, अलबत्ता सुन्दर दुहरे शरीर और ऊँचे कुल की लड़की को अपने मृत-पति से भी बहुत प्यार था। उसने नगर से बाहर अपनी जमीन पर उसकी याद में एक समाधि बनवाई। इस पर एक गुरुद्वारा बनवाया और···और फिर लगभग डेढ़ वर्ष बाद मृत-पति के वीर्य से एक बच्चे को जन्म दिया—फिर कानाफूसी हुई। एक जर्मन विशेषज्ञ को बुलवाया गया जिसने आकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि वीर्य मृत-पति का ही है। ऐसा हो जाता है कि बच्चे का बीज डेढ़ वर्ष तक कोख में रह जाए। किसी अप्रत्याशित विपत्तियों शोक से बच्चे का पोषण रुक सकता है और फिर स्वयं कुछ समय बाद यह पोषण प्रारम्भ

हो सकता है। न्यायालय तक उत्तराधिकार का मुकदमा पहुँचा। कुछ न बना तो···

तो हवेली के तीन भाग हो गए। अन्दर वाले आधे रिहायशी भाग में माता सरदूलकौर···ड्योढ़ी के समीप वाले आधे भाग में माता चन्द्रकौर और बाहर की पाँच सड़कों वाली दुकानों की आजीवन स्वामिनी बहू—परन्तु गजराजसिंह निस्संतान मरा—उसका बेटा निस्संतान मरा, इसलिए इन तीनों के जीवन के बाद सम्पत्ति की मालिक सरकार···किसी को आपत्ति न ऐतराज···

और अब गुरमुखसिंह कहता है, "मां, नया कानून बन गया है। अब मुझे दस वर्ष तो यहाँ किराये पर रहते हुए हो गए। केवल दो वर्ष और हैं। अगर तुम चल बसीं तो अपनी दुकान वाले स्थान का मालिक मैं स्वयं हूँ।"

और चन्द्रकौर एक क्षण सोच कर कहती, "अच्छा! यह कानून बन गया? तो मुझे क्या है? मुझे क्या अन्तर पड़ता है? वाहे गुरु का दिया बहुत कुछ है····"

ड्योढ़ी में आगे चलते जाएँ—दाएं हाथ दोनों दरवाजे गुरमुखसिंह की बड़ी दुकान के हैं। बाएं हाथ वाला एक अकेला दरवाज़ा भी गुरमुखसिंह की दुकान के स्टाफ़ का है। आगे आंगन मिलता है। आंगन बाएँ हाथ को दूर तक फैला है। दाएँ हाथ एक छोटी-सी गली का मोड़ मुड़ें तो माता सरदूलकौर का रिहायशी मकान है। बाएँ हाथ आंगन में सामने जो कमरे हैं उनमें एक डाक्टर की दुकान है। एक खेलों के सामान की दुकान है। एक डेरी है और एक दफ्तर है। मजदूरों की पार्टी का दफ्तर, जिसमें दिन-रात नारे लगते हैं, मीटिंगें होती हैं, भाषण दिए जाते हैं, अखबार और किताबें पढ़ी जाती हैं।

परन्तु ड्योढ़ी से निकलते ही जब आंगन आरम्भ होता है तो जो सबसे पहली वस्तु दिखाई पड़ती है वह पंछी पेंटर की दुकान है 'पेंटर्ज़'—उर्दू और अंग्रेज़ी में विभिन्न बोर्ड लगे हैं। एक छोटा-सा लकड़ी का

खोखा है। इसमें कुछ रंग के डिब्बे पड़े हैं। ब्रुश हैं। बने, अधबने बोर्ड हैं और पेंटर बावरी है। बाहर आंगन में उसके बोर्ड धूप में सूखने के लिए पड़े रहते हैं। काफ़ी खुला स्थान है।

सुबह हुई है। पेन्टर के खोखे के सामने एक तख़्ता लगा है। बंद है। अभी पेन्टर आएगा। मलमल का महीन कुर्ता और पायजामा पहने। इकहरे शरीर का आर्टिस्ट आएगा। दरवाजा खोलेगा। साथ की दुकान से उर्दू का अखबार मांगेगा और फिर बैठ जाएगा। अख़बार पढ़ेगा। यदि कल का कोई काम पड़ा हो तो उसे पूर्ण करेगा, अन्यथा भगवान् पर भरोसा कर बैठा रहेगा। गीत गुनगुनाता रहेगा, पढ़ता रहेगा।

कहानी पुरानी है। एक बार पेंटर के एक मित्र ने लिखी थी और जब प्रकाशित हुई थी तो साहित्यिक जगत् में एक हलचल मच गई थी। लोग दूर, पास से पेंटर को देखने, उससे एकाध बात करने के लिए आने लगे थे। कहानी पुरानी है परन्तु उसके बिना पेंटर की चर्चा अधूरी है। इसलिए सुनिए.......।

उसने धीरे से कहा—"लेकिन मेरा तो जी चाहता है कि मैं आने वाले पचास वर्ष चुपके-से सोया रहूँ और जब जागूँ तो इन्कलाब आ चुका हो और नया समाज जन्म ले चुका हो।...मगर..."

मैंने उसकी ओर प्रश्नसूचक निगाहों से देखा।

उसने चोर-नजरों से दायें-बायें देखा और कहा—"मगर जागने पर मेरी उम्र यही हो, जो कि अब है!"

मैं हँस पड़ा। मैंने कहा—"तुम्हारी बातें तुम्हारे व्यक्तित्व से भी ज्यादा अजीब हैं।"

"—शायर भी प्रायः मुझे यही कहा करता था!"—उसने एक गहरी साँस लेते हुए कहा।

× × ×

मैं और पेंटर बावरी मिलें और शायर लुधियानवी की चर्चा न हो, यह असम्भव था। पार्टी आफिस में, किसी मीटिंग में या बाजार में जहाँ भी हम मिलते, वह किसी-न-किसी बहाने इस प्रसिद्ध कवि का जिक्र छेड़ देता। शायर का बाल्यकाल और जवानी लुधियाना में बीती थी। पेन्टर बावरी के कथन के अनुसार वह उसका मित्र भी था और सम्बन्धी भी। वह उन दिनों की चर्चा करता, जब शायर के पास फूटी कौड़ी भी न थी और कालेज से निकाले जाने के बाद वह लुधियाना की सड़कों पर अनधुले कुरते और पायजामे में आवारा फिरा करता था। उन दिनों पेन्टर बावरी की 'पेन्टर-शाप' उसके लिए आश्रय का सर्वोत्तम स्थान था। दोपहर की धूप से बचने के लिए वह रोज़ाना वहाँ आ बैठता। शाम को चाय का प्याला भी वहीं पीता। पेन्टर बावरी अपने कार्य में व्यस्त रहता और शायर अपनी नयी और पुरानी कविताओं की चीर-फाड़ में लगा रहता, मूँगफली खाता रहता, जम्हाइयाँ लेता रहता और इस जर्जर व्यवस्था को मन-मन-भर की गालियाँ दे-देकर अपना मन हल्का करता रहता। उन दिनों शायर को स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं आ सकता था कि किसी दिन वह हिन्दुस्तान के मशहूर कवियों में स्थान पाने के साथ सिने-जगत् का भी एक बड़ा गीतकार बन जाएगा। उसके पास कार होगी। बढ़िया फ्लैट होगा। पैसा होगा। और फिर उसे इस जर्जर व्यवस्था को बदलने और इन्क़लाब लाने की आवश्यकता नहीं रहेगी, वह लुधियाना के मित्रों को बिल्कुल भूल जायगा।

"—शायर लुधियानवी को सबसे महान् कविता 'राजमहल' है।···"

चर्चा एक दिन फिर छिड़ी और मैंने कहा—"यह वह कविता है, जिस पर हम जितना भी फ़ख्र करें, कम है। एक नया ख़याल, एक नया दृष्टिकोण, मज़दूरों और कामगारों की महानता और उस पर रोमांच और प्यार की हल्की-हल्की चाशनी···कमाल है !"

उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—"यह कविता कहने के लिए वह

कई दिनों तक बेक़रार रहा था। वह मेरे पास बैठता, चुपचाप, खमोश-खमोश···फिर भी उसकी अँगुलियों की पोरें थिरकती रहतीं, हाथ पारे की तरह इधर-उधर हिलते रहते, आँखें पुतलियों में बेक़रारी से घूमती रहतीं।···और जब एक शाम उसने यह कविता कह ली, तो वह किसी को सुनाने के लिए उत्सुक हो उठा। सबसे पहले वह मेरे घर आया। मैं घर में ही था, लेकिन मेरी पत्नी मुझसे पहले ही झगड़ा कर रही थी और मेरे बाहर जाने के विरुद्ध थी। उसने अन्दर से ही कहलवा दिया कि मैं घर में नहीं हूँ। लौटते हुए शायर ने ऊँची आवाज़ से कहा—पंछी! यदि घर में हो, तो सुन लो! मैंने अपने जीवन की सफलतम कविता कह ली है। अगर तुम्हें सुनने की इच्छा है, तो स्पैन्सर होटल में आ जाओ!' मैं कपड़े पहनकर भागा और उसे जा लिया। मैं पहला व्यक्ति था, जिसने उसकी इस प्रसिद्ध कविता को सुना!"

"—कवि के तौर पर तो वह महान् है,—मैंने कहा—देखो न, पहले फ़िल्मों में कितने घटिया गीत होते थे, मगर अब हमें वहाँ भी अच्छे गीत सुनने को मिलते हैं।"

"—लेकिन दोस्त के तौर पर वह गोली से उड़ाये जाने के योग्य है!"—उसने कटुता से कहा।

× × ×

"—सन् सैंतालीस की गड़बड़ी में वह यहाँ नहीं था,—पेन्टर बावरी ने पुरानी यादों को कुरेदते हुए एक दिन मुझे बताया—लेकिन उसकी बूढ़ी माँ यहीं थी। उसकी बूढ़ी माँ उसके ढेर सारे मित्रों में से एक मुझे ही काम का आदमी समझती थी। उसके मकान पर भी गुंडों ने हमला किया, मगर मैं अपनी जान जोखिम में डालकर भी बेचारी बुढ़िया को वहाँ से निकाल लाया और उसे कैम्प तक पहुँचाया। कैम्प के रास्तों पर बड़ा खतरा था, लेकिन हम किसी-न-किसी तरह वहाँ पहुँच ही गये। वहाँ जाकर पता चला कि सरकार की ओर से आटे-रोटी का कोई

प्रबन्ध नहीं है। हर परिवार अपना आटा साथ लाया था। बुढ़िया ने कहा कि वह किसी-न-किसी प्रकार गुजारा कर ही लेगी, मगर मैं दोबारा जान को खतरे में डालकर उसे आटा देने गया।'''उस दिन मेरे घर में केवल पाँच आने थे। मेरा काम उन दिनों बिल्कुल बन्द था।"

मैं उसके ब्रुश को कपड़े पर चलते हुए देखता रहा। वह ट्रांसपोर्ट कम्पनी के भूख-हड़तालियों के बैनर लिख रहा था। मैं जानता था कि इस प्रकार के कामों से उसे केवल लागत के पैसे मिलने की आशा होती है और कभी-कभी वे भी नहीं। फिर भी वह बड़ी-बड़ी दूकानों के बोर्डों के समक्ष भी ऐसे कामों को प्राथमिकता देता था। हड़ताल, जलसा, जलूस, मजदूरों के संघर्षों से उसकी सहानुभूति केवल बातों तक ही सीमित न थी, वह हर सम्भव तरीके से इनमें अपना भाग डालता था।

मैंने शिकायत के स्वर में कहा—"परन्तु उसने तो कभी तुम्हें पत्र भी नहीं लिखा। तुम्हारे पास आर्ट है। यदि तुम बम्बई चले जाओ, तो उसकी सहायता से किसी स्टुडियो में काम नहीं कर सकते ?"

उसने एक आह भरते हुए कहा—"बम्बई भी गया था। तीन दिन उसके फ्लैट में रहा। चौथे दिन स्टुडियो जाते हुए वह कहने लगा, 'पंछी, आज अपना बिस्तर सँभालो और चलते-फिरते नजर आओ! शाम को यहाँ खाना नहीं मिलेगा, समझे!"

"—तब ?"

"—तब मैं स्वयं को एक ऐसे लड़के की तरह अनुभव करने लगा, जिसकी पतंग कट गयी हो और उसके पास नयी पतंग भी हो, पर डोर खरीदने के लिए दाम न हो!"—उसने कहा।

× × ×

एक बार उसने मुझे एक पत्र दिखाया, जो वह शायर लुधियानवी को पोस्ट करने जा रहा था। लिखा था, "प्यारे! तुम-जैसे मित्रों के एक पूरे ढेर को सिक्कों की तरह टनखा-टनखाकर देख लिया, मगर कमबख्त सब-के-सब खोटे, ग़ैर-टकसाली निकले! अब मेरे चारों ओर अँधेरा

है और यह अँधेरा मेरी आत्मा को खाये जा रहा है। तुम अमीर हो लेकिन अभी तक अपने फ्लैट में केवल दो बल्ब रोशन करते हो। अपनी दीवारों पर, जब मैं अमीर हो गया तो देखना, हजार-हजार के बल्ब लटका दूँगा।"

मैंने कहा—"मुझे विश्वास है कि वह तुम्हें इस पत्र का उत्तर देगा।"

वह कटुता से मुस्कराया था—"मुझे अब किसी बात पर विश्वास नहीं रहा। फिर भी इरादा है कि छः मास तक हर सप्ताह उसे एक पत्र लिखूँ। कभी-न-कभी तंग आकर तो जवाब देगा ही। चाहे गालियाँ ही दे।"

"—नहीं,"—मैंने कहा—"तुमने ठीक रूप से कोशिश भी तो नहीं की कि बदले हुए वातावरण में उससे मित्रता निभा सको। आखिर कुछ वर्ष पहले ही तुम दोनों नाखून और गोश्त की तरह थे। तुम्हारी मुहब्बत···"

वह लगभग चीखकर बोला—"मुहब्बत? इस नाम के लेबल के नीचे बहुत-सी चीजें बिकती हैं, मगर ज्यादातर बनावटी, सब नकली!"

× × ×

एक दिन उसने मुझसे कहा—"मुझे यूँ लगता है, जैसे साठ साल पहले मुझे एक बर्फ की सिल पर रखा गया था, मगर मेरा शरीर अभी तक गर्म है।"

मैंने मुस्कराकर कहा—"तुममें अवरोध-शक्ति अधिक होगी।"

वह चौंक पड़ा। आज पहला दिन था कि मैंने उसकी विचित्र-सी बात का विचित्र-सा उत्तर दिया था। चौंक कर कुछ देर मेरी ओर देखने के बाद उसने कहा—"तुम ठीक कहते हो। मुझमें यदि इतनी अवरोध-शक्ति न होती, तो मैं कब का मर चुका होता। ये चरके, यह नित नये घाव, ये पुराने नासूर, इन सबके कीड़े मिकलर भी मेरी अवरोध-शक्ति

खत्म नहीं कर सकते। इसीलिए मैं जिन्दा हूँ। जिन्दा तो खैर नहीं, जी जरूर रहा हूँ।"

मैं चुप हो गया। उसने शून्य में घूरते हुए फिर कहा—"यदि मैं एक बिल्ली होता, तो जोर से मियाऊँ करके दूध की कढ़ाई पर झपट पड़ता।""लेकिन मैं एक इन्सान हूँ, बिल्ली नहीं!"

× × ×

उसने एक दिन इस सिलसिले का छठा पत्र मुझे दिखाया। लिखा था, "शायर शहजादे! जी तो चाहता है कि तुम्हें खत न लिखूँ क्योंकि तुम इतने कमीने, खुदगरज, घटिया और तीसरे दर्जे के व्यक्ति हो कि तुम्हें लिखते हुए कोफ्त होती है। लेकिन क्या करूँ, जब गुजरे दिनों की यादें एकाएक उभर आती हैं और अपनी आँखों से घूरने लगती हैं, तो मैं घबरा जाता हूं और मुझे सहारे की तलाश होती है। तुम जानते हो, मेरी आयु तीस वर्ष की है। तुम्हारी भी इतनी ही होगी। मगर विचित्र बात है कि मैं एक ही समय में पचास का और पन्द्रह का भी अनुभव करता हूं।"...

सातवाँ पत्र भी देखा। उसी प्रकार अनोखा था, "मैं किसी ब्रांच लाइन के स्टेशन की तरह अब भी चुपचाप धूल में नहाया एक रन-थ्रू गाड़ी को देख रहा हूँ। आज तुम्हें खत लिखने लगा हूं, तो यूँ अनुभव कर रहा हूँ, जैसे एक बार की जली हुई सलाई को दोबारा जलाने लगा हूँ।"...

मैं उसे एक चाय की दूकान पर ले गया। वह बेहद उदास था। मैंने दिलासा देने की कोशिश करते हुए बातचीत का रुख मोड़ दिया।

"—पर्ल होजरी के भूख-हड़तालियों में से एक की हालत नाजुक है।"

वह गुमसुम बैठा रहा। थोड़ी देर के बाद धीरे से बोला—"यही चिन्ता मैं भी कर रहा हूँ। साथी काहन चन्द एक नया मजदूर है। उसकी एक विधवा माँ है, दो बच्चे हैं और रोगी पत्नी है। जब तक लेबर कमिश्नर का फैसला आयगा, वह खत्म हो चुका होगा।"

"—तुम्हारे काम-काज का क्या हाल है ?"—मैंने रुख फिर मोड़ा।

"—फेयरडील क्लाथ शाप ने बोर्ड के दाम अभी तक नहीं दिये। आज सारा दिन कोई काम नहीं था, इसलिए एक पत्रिका पढ़ता रहा। सोच रहा हूँ कि आगामी पत्र में शायर से कम-से-कम वे पैसे तो माँग लूँ, जो वह समय-समय पर मुझसे उधार ले जाता रहा है।"

ज़िन्दगी में हर ओर तल्खी-ही-तल्खी है, यह सोचकर मैंने बात फिर न पलटी।

× × ×

"—रात प्रकृति का एक खामोश मजाक है, जो वह लोगों से करती है। यदि रात न हो, तो हमें यह आभास कैसे हो कि कुदरत हमसे शक्तिशाली है ?"—आज वह दार्शनिक बन रहा था।

"—और दिन ?"

"—दिन अभी हुआ नहीं। जब दिन होगा, तो उसके बारे में भी कह लिया जायगा।"—उसने कहा—"दिन हो जाने पर मुझे शायर की मित्रता की जरूरत नहीं रहेगी। फिर मैं बीते हुए दिनों की ओर पलट कर नहीं देखूँगा !"

"—पत्रों का सिलसिला किस सीमा तक आगे बढ़ा है ?"—मैंने पूछा।

"—आज उसे तेरहवाँ पत्र लिखा है। सुनो, मैं तुम्हें सुनाता हूँ।"—उसने जेब से एक तह किया हुआ कागज निकाला और पढ़ना शुरू कर दिया—"शायर प्यारे ! तुमने वह कहानी सुनी होगी कि एक आदमी तेरह तारीख को तेरह नम्बर गली के तेरह नम्बर मकान से निकला। उसके पास छोटे-बड़े तेरह नग थे। उसे जो टाँगा मिला, उसका म्युनिसिपल नम्बर तेरह था। स्टेशन पर पहुँचकर उसे पता चला कि उसकी गाड़ी तेरह बजकर तेरह मिनट पर जाती है। उसने तेरह नम्बर का कुली किया और गाड़ी के तेरहवें डिब्बे की तेरह नम्बर सीट पर बैठा··· आदि ! अर्थ कहने का यह है कि मेरा तेरहवाँ पत्र है और इसे मैं

आज तेरह तारीख को तेरह नम्बर के लेटर बक्स से पोस्ट कर रहा हूँ ! मालूम नहीं कि तेरह के चक्कर में फँसे हुए उस व्यक्ति का क्या बना और मेरे पत्र का क्या होगा ? मगर एक बात का यकीन है कि तुम इसका उत्तर नहीं दोगे, इसलिए कि तुम एक धोखेबाज समय के पुजारी और चालाक आदमी हो।…"—इसके बाद गालियाँ थीं और ऐसी थीं कि उनकी चर्चा यहाँ करना अच्छा नहीं है।

"—अब वह तुमसे अवश्य नाराज़ हो जायगा,"—मैंने अपनी राय दी।

"—नहीं !"—उसने विश्वास के स्वर में कहा—"अगर आदमी की सन्तान हुआ, तो मुझे इतनी ही गालियों से भरपूर पत्र लिखेगा !"

"—और यदि न लिखे, तो ?"

"—तो मुझे उससे वास्ता ही क्या है ? इतना ही ना, जितना किसी मुर्दे को उसकी कब्र पर चलने वाले आदमी से होता है !"

× × ×

मैं उसकी दूकान पर बैठा ज़िला किसान कान्फ्रेंस का नोटिस लिख रहा था और वह अपने काम में व्यस्त शायर का एक गीत गुनगुना रहा था, जो उसने रात ही किसी फिल्म में सुना था। उसकी दूकान के खोखे के साथ ही एक बड़ी दूकान थी, जिसका बूढ़ा मालिक अपने धनवान होने के अहंकार में प्रायः लोगों से झगड़ा किया करता था। मैंने देखा, दूर से एक अधेड़-उम्र फ़क़ीरनी आई और, "बाबा, पैसा दे ! बाबा, पैसा दे !" कहती हुई अन्दर घुस गयी। उसी क्षण अन्दर से गालियों की बौछार आई और उसके साथ ही फ़कीरनी बड़बड़ाती हुई सीढ़ियों से नीचे उतर आयी।

"—बूढ़ा खुद को बाबा कहलवाना पसन्द नहीं करता !"—पेन्टर बावरी ने कहा और साथ ही उसने आवाज दी—"ऐ बुढ़िया ! इधर आओ !"

जब माँगनेवाली उसके निकट आई, तो उसने कहा—"एक बार मुझे कह, बाबा, पैसा दे !"

फ़कीरनी ने एक कूक-भरी हुई गुड़िया की तरह भाव-रहित स्वर में यह वाक्य दोहरा दिया।

उसने जेब में हाथ डालकर एक रुपया निकाला और चकित फ़कीरनी की झोली में डाल दिया।

मुझे मालूम था, कि जो बोर्ड वह लिख रहा है, उससे उसकी आमदनी एक रुपये से अधिक नहीं।

× × ×

कालेज में मुशायरा था। मैं भी निमन्त्रित था और पेन्टर बावरी की इच्छा पर मैंने उसे एक पास दिलवा दिया था। हम स्थानीय कवि इकट्ठे होकर पैदल ही जा रहे थे। बावरी भी साथ था और कुछ कालेज के विद्यार्थी भी थे, जो यूनियन की ओर से हमें लेने आये थे।

"—शायर लुधियानवी को उसके ओल्ड-स्टूडेन्ट होने का वास्ता भी दिया गया। बम्बई से आने-जाने का सेकण्ड कलास किराया भी और चालीस रुपये भी पेश किये गये, मगर उसने हमारे पत्रों का उत्तर तक न दिया।"—एक विद्यार्थी ने चलते हुए कहा।

"—साला है ही ऐसा !"—पेन्टर बावरी ने कहा।

विद्यार्थी ने इसे किसी बड़े कवि की राय समझते हुए फिर कहा—"अजी, शायर भी क्या है ? यही न कि दो-चार नज़में कह लीं और फिल्मों में चांस मिल गया। वर्ना उसमें और हमारे चन्दन लाल 'मुज़तिर' में फ़र्क ही क्या है ? 'मुज़तिर' उससे हज़ार दर्जे अच्छा शायर है। उसकी नज़में रोज़ाना 'मिलाप' और 'प्रताप' में छपती हैं।"

हम होटों में ही मुस्कराये और चुप रहे, मगर पेन्टर बावरी ने आगे बढ़कर लड़के को कालर से पकड़ लिया—"क्या कहा ? शायर से चन्दन लाल 'मुज़तिर' अच्छा शायर है ? जाहिल ! अनपढ़ ! बेवकूफ़ ! एक थप्पड़ लगे, तो होश ठिकाने आ जायँ !"

लड़का बेचारा चकित-सा चारों ओर देख रहा था। हमने बड़ी मुश्किल से उसे छुड़ाया, लेकिन पेन्टर बावरी का मूड रात तक खराब रहा।•••

× × ×

मैं लगभग एक मास के बाद उसे मिला। मिलते ही उसने मुझे कहा—"मैं कई दिनों से तुम्हें ढूँढ़ रहा था। शायर लुधियानवी, सुना है, पटियाला के एक मुशायरे में आया, लेकिन उसका दिल न चाहा कि लुलियाना भी होता जाय। साला ! कुत्ते का !"—वह बहुत-गर्म था।

मेरे पास कोई उत्तर न था। पता मुझे भी चला था कि शायर देहली की एक कान्फ्रेंस में शामिल होने के बाद पटियाला आया था।

उसने फिर कहा—"मैंने उसे सात पत्र लिखकर जेब में रख लिये हैं। सोचा है, कि हर सप्ताह उसे एक पत्र पोस्ट करता रहूँ। तुम्हें सुनाना चाहता था। कहो, क्या विचार है ?"

हम एक चाय की दूकान पर चले गये। उसने पहला पत्र दिखाया। उसके पटियाला आकर लौट जाने पर खेद और गुस्से से जले-भुने हुए भाव थे। दूसरे पत्र में उसे अय्याश और बेवफा ऐक्ट्रेसों से बचकर चलने की राय दी थी और उसकी बूढ़ी माँ की आशाओं का वास्ता देकर कहा गया था कि वह शीघ्र ही किसी शरीफ घराने की लड़की से ब्याह कर ले। इसके बाद दो-तीन पत्रों में वही पुराने शिकवे थे, शिकायतें थीं। हर पत्र के लिखने का ढंग अनोखा था। एक पत्र में लिखा था, "शायर भाई, तुम्हारे पत्र का इन्तजार करते-करते मेरी दाढ़ी पतीली में उबले हुए चावलों की तरह सुफ़ेद हो गई है।"

एक और पत्र में यह न भूलनेवाला वाक्य था, "मैं एक मुद्दत से बीमार हूँ। मेरी बीमारी केवल बेकारी है। आज तो मैं आटा भी उधार नहीं ख़रीद सका, जबकि सुना है, तुमने कार नक़द ख़रीदी है !"

पाँचवें पत्र में दो बड़े अजीब फ़िक़रे थे, "तुम शो-केस में रखी हुई आर्ट की एक बहुमूल्य मूर्ति हो, और मैं फटे-पुराने कपड़े पहने एक ऐसा

ग़रीब आदमी हूँ, जो उसे अपना बना हुआ देखना चाहता है, यह जानते हुए भी कि मूर्ति को खरीदने के लिए उसके पास दाम नहीं है।"

दूसरा फिकरा था, "मैं सलीब के तख्ते पर लगा हुआ बीसवीं सदी का मसीहा हूँ, और अब, जबकि जमाना मेरे हाथों और पाँवों में कीलें गाड़ चुका है और मेरे सिर पर काँटों का ताज रख चुका है, मैं सोच रहा हूँ कि यदि मैंने स्वयं को खुदा का बेटा न कहा होता, तो कितना अच्छा था, इसलिए कि मैं केवल एक इन्सान था !"

मेरे मुँह से अनायास ही निकला—"बहुत खूब !"

उसने मुझे कहा—"मैं कहानीकार नहीं हूँ !"

आखरी पत्र में एक वाक्य था, "यदि दुनिया एक बहुत बड़ा सीना होती, तो मैं उसमें हाथ डालकर उसका दिल नोच लेता !..."

× × ×

वह शायर लुधियानवी को पत्र लिखता रहा। कड़वे, कसैले, कभी प्यार और स्नेह की चाशनी लिए, कभी तानों और गिलों से भरपूर, जिनमें उनका अपना ही अनोखा रंग झलकता। वह स्वयं कुढ़ता रहा, केवल इसलिए कि उसके बदले में दुनिया को कुढ़ना चाहिए था। कहा नहीं जा सकता कि शायर उसके पत्रों को पढ़ता भी था या यूँ ही रद्दी की टोकरी में फेंक देता था। परन्तु मैं यह बात नहीं मान सकता था। उसके पत्र इतने अनोखे और दिलचस्प होते थे कि एक कवि के लिए उन्हें पढ़े बिना फेंक देना असम्भव था।

मैं इस बीच में उसके साथ वाली बड़ी दूकान पर नौकर हो गया। अब मुझे पेन्टर बावरी से बातें करने का अवसर अधिक मिलने लगा।

एक बार किसी फिल्मी पत्रिका से उसे समाचार मिला कि शायर का अपने ग्रुप के एक म्यूज़िक-डायरेक्टर से झगड़ा हो गया है। सारी दुनिया जानती थी कि शायर की सफलता का भेद इसी म्यूज़िक-डायरेक्टर से अच्छे सम्बन्ध थे। अब लोग उसकी नाकामी का इन्तज़ार करने लगे। इसके बाद इस फिल्मी पत्रिका से उसे समाचार मिला कि जिन-

जिन फिल्मों के लिए शायर ने गीत लिखे थे, उनमें इस म्यूज़िक-डाय-रेक्टर ने म्यूज़िक देने से इन्कार कर दिया है। परिणाम यह कि उन फिल्मों के कांट्रैक्ट भी शायर से छिन गये।

मैंने अपने भय का वर्णन पेन्टर बावरी से किया और उसे बताया कि अब शायर का सूर्य अस्त हो रहा है।

उसने धीरे से कहा—"अब समय आ गया है कि मैं उसे एक अंतिम पत्र लिखूँ!"—और साथ ही उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

इस बात के दूसरे दिन ही उसने एक बड़ा-सा आर्ट-कार्ड का शीट लेकर अपने ब्रुश से शायर को एक पत्र लिखा, "मैंने कभी चढ़ते हुए सूरज को सलाम नहीं किया। अब तुम्हारा सूरज ढल रहा है। जब यह बिल्कुल ही छिप जाय, तो लुधियाना लौट आना। मेरे द्वार तुम्हारे लिए खुले हैं। यहाँ आकर तुम 'राजमहल' जैसी शानदार नज़में फिर कह सकोगे।"

फिर उसने बहुत से दुअन्नी-दुअन्नी वाले लिफ़ाफ़े जेब से निकाले। किसी प्रकार की हिचकिचाहट के बिना उसने मुझे बताया—"ये वे पत्र हैं, जो तुम पढ़ चुके हो। मैंने कभी इन्हें पोस्ट नहीं किया। लेकिन अब समय आ गया है कि मैं इन-सबका बंडल बनाकर इस नये पत्र के साथ उसे भेज दूँ।"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। वह बेहद खुश था!

× × ×

अब सुबह हुई है। पेंटर मुंह में लैम्प का सिग्रेट लिए, शायर का कोई नया फिल्मी गीत गुनगुनाता हुआ आएगा। बम्बई जाकर फिल्मी संसार में काम मिलने की आशा जब से समाप्त हुई है वह और अधिक सिनिक हो गया है। बहुत कम बात-चीत करता है। सारा दिन गुनगुनाता रहता है। "जाने वे कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला।"—वास्तव में वे लोग किसी और ही दुनिया के निवासी हैं

जिनके प्यार का जवाब प्यार से मिलता है। इस दुनिया में तो प्यार का जवाब धोखा है, स्वार्थ है, घृणा है और हर माधुर्य विष से भरपूर है।

पेंटर कहता है "साले, पन्द्रह वर्ष हो गए लैम्प का सिग्रेट पीते हुए, परन्तु आत्मा में अभी तक अंधेरा है!"

× × ×

पेंटर से तनिक और आगे बढ़ें। दाएं हाथ बरामदे में डाक्टर ध्यानसिंह की दुकान है। ध्यानसिंह बूढ़ा हो गया है। शरीर फैल गया है। चलने में कष्ट होता है परन्तु फिर भी दिन में दो बार नियमितता से आकर दुकान खोलता है। दोपहर को तीन घंटों के लिए दुकान बंद करके धूप में पैदल घर जाता है। डाक्टर ध्यानसिंह परिश्रमी व्यक्ति है—कुछ समय तक उसके पास एक कम्पोंडर भी रहा, परन्तु कुछ समय तक ही। डाक्टर अधिक तड़क-भड़क का समर्थक नहीं। वह श्रद्धा और विश्वास से लोगों को स्वस्थ करने का समर्थक है। आधे से अधिक बुखार के रोगियों को वह टाइफ़ाइड बताता है। टाइपफ़ाइड उसका सबसे प्रिय रोग है। उसमें रोगी को दवाई नहीं देनी पड़ती। केवल सम्मति और कुछ एक अर्क और कब्ज दूर करने की गोलियाँ। इसी से वह अपने प्रतिदिन कुछ रुपये बना लेता है। इसलिए आप उसके पास मलेरिया लेकर जाइए, दो दिन में टाइफ़ाइड वापस ले आइए। डाक्टर बूढ़ा है परन्तु अब कुछ दिनों से उसके पास ग्रामीण रोगी आने लगे हैं। ग्रामीण लोग, जो रोगी को गड्डे में लिटाकर शहर लाते हैं, जिस डाक्टर के पास ठहराने के लिए खुला स्थान हो, वहाँ वे रोगी को लाते हैं। डाक्टर ध्यानसिंह के सामने आंगन है। गजराजसिंह की हवेली का खुला आंगन, जिसमें अब रोगियों की तीन-चार चारपाइयां हैं। पूरा हस्पताल बना हुआ है। डाक्टर ध्यानसिंह बूढ़ा व्यक्ति है। बूढ़े सिंह कभी शिकार की खोज में नहीं जाते। शिकार स्वयं उनकी खोज में उनकी मांद तक जाता है। पगों के

चिन्ह भीतर की ओर जरूर जाते हैं परन्तु लौटकर आते दिखाई नहीं देते। कहानी इसी तरह चलती है!

× × ×

डाक्टर ध्यानसिंह के बिलकुल साथ ही बरामदे में दूसरी दुकान है। बाहर से देखने में कुछ पता नहीं चलता। एक छोटा सा-कमरा है। भीतर प्रविष्ट हों तो एक मेज़ दिखाई पड़ती है जिसके चारों ओर हाकियां, फुटबालों के कवर, टेनिस और बैडमिंटन के रैकेट बिखरे पड़े मिलते हैं। इन सबके बीच में मेज़ पर टांगें रखे और कुर्सी पर धड़ फैलाए एक व्यक्ति बिखरा पड़ा दिखाई देता है। सामने टिफ़िन-कैरियर खुला पड़ा है। बिखरा हुआ व्यक्ति सुप्तावस्था में है। छत पर पंखा है, जिसकी हवा उसके छोटे कमरे में और साथवाले बड़े कमरे में सम्मिलित रूप में जाती है—पहले वास्तव में एक कमरा था, अब सात फुट ऊँची दीवार बनाकर दो कमरे बना लिए गए हैं।

सिद्ध हुआ कि दुकान खेलों के सामान की है और मेज़ और कुर्सी पर सम्मिलित रूप में बिखरा व्यक्ति, इसका स्वामी है। स्वामी एक बड़े डील-डौल का रीछ-जैसा व्यक्ति है। मन, बुद्धि, शरीर, सबमें रीछ सा है---नाम जागीरसिंह है परन्तु गुरमुखसिंह उसे ख़ोफनाकसिंह कहता है।

बड़ी रोचक कहानी है!

गुरमुखसिंह जब, बहुत दिन हुए, कालिज की एम० ए० क्लास में था तो ख़ोफनाकसिंह द्वितीय वर्ष में था। यह और बात है कि वह द्वितीय वर्ष से आगे नहीं पढ़ पाया था। गुरमुखसिंह अपने ही कालिज के एक नवयुवक प्रोफ़ेसर से मित्रता का दावा करता था और यह नवयुवक प्रोफ़ेसर संयोगवश ख़ोफनाकसिंह का बड़ा भाई था—एक लड़की से बड़े भाई का प्रेम हो गया तो उसकी छोटी बहिन से छोटा भाई प्रेम करने लगा। दोनों लड़कियाँ कालिज में पढ़ती थीं।—पौरुषेय—सौंदर्य तो खैर दोनों भाइयों के पास नहीं फटका था परन्तु बड़े के पास विद्या थी, विवेक और बुद्धि थी और प्रसिद्ध थी। छोटा

इन सब बातों से कोरा था परन्तु ······

एक दिन उसने छोटी बहिन से कहा, "जीतो, माँ झावइए, मुझे तुम से लव हो गया है !"

"लव······?" चकित होकर उसने पूछा "जागीरसिंह, तुम क्या कह रहे हो ?"

"हां, लव······" उसने होठों के कोनों से बहती हुई राल की चिन्ता किए बिना बताया था। "लव······एल, ओ, बी, ई······आई, लब यू, गाई डीयर।" व का वास्तविक उच्चारण अपनी वाणी से करना उसके वश में नहीं था।

बड़ी रोचक कहानी थी। गुरमुखसिंह अब भी सुनाता है, तो हँसता है।

एफ. ए. उससे पास न हो सकी। जीतो से उसका 'लब' पूर्णता प्राप्त न कर सका। इसलिए जब कालिज छोड़ दिया और घर की खेती पर बैलों को 'तत्-तत्-तता' करना पड़ा तो जागीरसिंह का विवाह हो गया—सौ बीघे ज़मीन उसकी अपनी थी, एक बीघा सुसराल से मिल गई। एक सौ एक बीघा ज़मीन जोती जाती रही। फसल अच्छी होती रही।

"सरदार मरलासिंह, एक सौ बीघा ज़मीन जोतता है।" गुरमुखसिंह मज़ाक में कहता है।

"एक सौ एक क्यों ?" कोई पूछता है।

"सौ बीघा घर की और एक सुभराल से मिली हुई साक्षात माँस और मज्जा की धरती !"

"गुरमुखसिंह, ओ तू जाने दे। इतना मज़ाक अच्छा नहीं होता !" वह खिसियानी हंसी हंसता है।

हाकियां हैं, फुटबाल हैं, नैट हैं, क्या कुछ नहीं है ? और यह सब सामान स्कूलों में सप्लाई होता है। दूर-दूर देहात के स्कूलों में घूम-फिर

कर सप्लाई होता है और फिर यहाँ वापस आ जाता है। विचित्र गोल-माल धन्धा है।

"हेडमास्टर साहब, चालीस हाकियाँ ले लीजिए······चार रुपये और फ़िफ़टी फ़िफ़टी। पुरानी हाकियाँ मैं कंडम मन्जूर होते ही ले जाऊंगा। एक-सौ साठ का बिल। अस्सी दीजिए और एक-सौ साठ की रसीद लीजिए!"

× × ×

"अस्सी दीजिए और एक-सौ साठ की रसीद लीजिए!" यह शिक्षा-विभाग है जिसके अध्यापक समाज के निर्माता माने जाते हैं। यह शिक्षा-विभाग है जिसमें कहने को तो रिश्वत और बेईमानी का नाम तक नहीं है परन्तु···एक-सौ साठ की रसीद और अस्सी का बिल!

× × ×

सुबह सचमुच निखर आई है। स्वर्गीय गजराजसिंह की हवेली के आंगन में लोग आने-जाने लगे हैं। किशन हलवाई का लड़का डिब्बा हाथ में लिए शौचालय की ओर भागा जा रहा है पार्टी के कार्यालय के बाहर चारपाइयों पर सोए हुए मजदूर-किसान भी जाग उठे हैं। सिग्रेट सुलगा रहे हैं। धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। किसानों की बातों में, तकावी के कर्जों, लगान की ज्यादती, फसलों की खराबी, मुजारों के दुर्भाग्य और जमींदारों की ज्यादती का रोना है। वे कभी-कभी तहसील में काम होने पर शहर आते हैं तो रात को यहीं ठहर जाते हैं। यही किसान सभा का दफ्तर है। यही टैकस्टाइल वर्कर्ज यूनियन का और यही होज़री वर्कर्ज यूनियन का—मजदूर केवल तीन हैं। इस समय तीनों एक चारपाई पर बैठे हैं। उनमें से एक टैकस्टाइल यूनियन का मन्त्री है। दूसरे दो मजदूर किसी दूसरे नगर से आए हैं। उनकी बातों में इतनी उदासी नहीं। कुछ उम्मीद की झलक है, आशा की ऊष्णता है। लेबर इंस्पैक्टर, लेबर कमिश्नर, बोनस नोटिस—शब्द सभी महान हैं, महान्— अत्यधिक बड़े शब्द हैं।

पार्टी आफ़िस के भीतरी कमरे से कामरेड सेन गुप्ता निकला है। बंगाल—काज़ी नजरुलसलाम, टैगोर, शरत् और सुभाष बोस का देश। बंगाल पंजाब से बहुत दूर है। बंगाल का नगर कलकत्ता पंजाब के इस नगर से ग्यारह मास दूर है, क्योंकि कामरेड सेन गुप्ता को बंगाल छोड़े हुए ग्यारह मास हो चुके हैं। ग्यारह मास पूर्व वह अपनी सभ्यता, अपनी धरती और अपने लोगों में था। अब वह पंजाब की कठोर जलवायु में है। कोमल और नाजुक शरीर, सांवला सलौना चेहरा, ऐनक, बिखरे बाल, धोती, कुर्ता और चप्पल—सेनगुप्ता गोर्की की 'माँ' का बंगला—अनुवाद पढ़ते हुए कहता है,—

"शाला, अमीर लोग गरीब को जीने नहीं देगा। उन्हें तो बम से उड़ाना होगा, बम से!"

कामरेड चमन कहता है "बच्चे हो तुम! बम से उड़ाने का जमाना गया। अब पंचशील का युग है।"

सेन गुप्ता फिर गोर्की की माँ में खो जाता है। यह किताब उसका धर्मग्रन्थ है। केवल उसका नहीं; सब नवयुवक क्रान्तिकारियों का धर्मग्रन्थ है। प्रत्येक नवयुवक क्रान्तिकारी स्वंय को 'पाफ़ल' समझता है। सेन गुप्ता भी समझता है। केवल अन्तर इतना है कि सेन गुप्ता काम नहीं करता। मजदूर नहीं, कारीगर नहीं। केवल पढ़ता है और पार्टी-दफ़्तर में कुर्सियां ठीक करके रख देता है। तसवीरें झाड़-पोंछ देता है और......खाना खा लेता है।

सेन गुप्ता जब बंगाल से बाहर निकला और यू० पी० तक पहुँचा तो उसका विचार था कि बंगाल से बाहर पार्टी बहुत मजबूत है। कानपुर में बहुत से कारखाने हैं। इसलिए वहां मजदूरों की जत्थेबन्दी भी मजबूत होगी। मजदूर जत्थेबन्दी का अर्थ पार्टी की शक्ति है। परन्तु वहाँ आकर उसे बहुत निराश होना पड़ा। कुछ दिन वह वहाँ रहा। फिर स्थानीय मंत्री ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "कामरेड" यदि काम चाहते हो, तो मिल सकता है। हम पहले ही छः होल टाइमर

उपस्थित हैं। तुम्हारे आने से हमें बहुत हर्ष हुआ था परन्तु यूँ ही तुम कब तक रह सकते हो ?"

सेन गुप्ता, बंगाल की निर्धन संतान, यू० पी० से चला तो पंजाब तक आ पहुँचा और अब गत दस मास से यहीं है। 'गोर्की' की माँ और मार्क्स के कैपिटल के रेखांकित अनुच्छेद पढ़ता है। पंजाबी बोलियों का बंगला में अनुवाद करता है। दफ्तर झाड़-फूंक कर साफ करता है और लीजिए......"शाला, अमीर लोग गरीब को जीने नहीं देगा ......"

शाला !

अमीर लोग गरीब को कैसे जीने देगा ? यदि जीने देता तो सेन-गुप्ता पंजाब क्यों आता ? बंगाल में ही क्यों न रहता ? जूट मिल में क्लर्की करता, डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन लेता, सुधा से विवाह करता। बड़े सुख से जीवन व्यतीत करता, बच्चे पैदा करता, मकान बनवाता और फिर कभी-कभी एकाध बार, अय्याशी भी कर लेता, चावल, 'भात' मछली और नसवार—परन्तु यह बंगाल नहीं है, पंजाब है ! एक वर्ष हुआ—कबिता प्रतिदिन कहती थी, "दादा, तुमरा मील का मैनेजर बहुत खराब आदमी है।"

"क्यों ?" सेन गुप्ता पूछता था।

"चाल में आता है, तो घूरता है। कल मेनका से कहने लगा, "अरी छोरी, तुमरी बिंदी काहे की बनी है ?—खूब चमकती है !"

"अच्छा ?" सेन गुप्ता एक ठंडी सांस लेते हुए कहता, 'मनेजर, शाला ! मैं उसे ठीक करेगा !"

सेन गुप्ता मैनेजर को ठीक न कर सका, कुछ भी न कर सका। केवल स्वंय ठीक हो गया, बिलकुल सीधा हो गया। मैनेजर ने एक बार उसे अपने कमरे में बुलाया। वह झिझकता-झिझकता गया, "नृपेन्द्र सेन गुप्ता ? तुम एकाऊंट्स ब्रांच में हो ?"

शाला ! उसने दिल में कहा । यूं बनता है, जैसे मुझे भूल ही गया हो । प्रकट रूप में उसने कहा "जी·······?"

"तुम कम्युनिस्ट है, प्रोपेगंडा करता है ? सबसे मेरे विरुद्ध बातें करता है ?" मैनेजर ने चश्मा उतार कर मेज़ पर रख दिया था। उसकी आँखें झपकते हुए भी अंगारे बरसा रही थीं "तुम देशद्रोही है। शाला, कम्युनिस्ट है ?"

सेन गुप्त के जी में आया, साले से कहे, नौकरी से जवाब देना है तो सीधे ही कह दे, गालियां क्यों देता है। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे सुधा का ध्यान आया। नौकरी छूट गई तो सुधा के माता-पिता उसकी शादी कहीं और कर देंगे, सुधा, सुधा······

उसने अपने जीवन का सबसे बड़ा झूठ बोला, "मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ, सर !"

"झूठ !" मैनेजर ने मेज़ पर जोर से हाथ मारा, "तुम शाला कम्युनिस्ट है। बाहर की यूनियन बनाता है। अन्दर की यूनियन का मेम्बर भी नहीं है। झूठ बोलता है शाला, सबसे मेरे विरुद्ध बात करता है। चाल में रहता है। मील के क्वार्टर में ?"

उसने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

"तो कल खाली कर दो ! समझे ! उधर कैशियर से नोटिस के सप्ताह का पैसा लो और भाग जाओ !"

× × ×

जीवन का सबसे बड़ा झूठ एक मृत सर्प की भांति हृदय के पौधे से लिटाए उसने चाल खाली कर दी। सुधा, तू सेन गुप्ता का जीवन थी। तेरे लिए उसने मैनेजर की गालियां सहन कीं। झूठ बोला। स्वंय को गाली दी परन्तु तुझे ज्ञात हुआ तो तू उससे मिलने भी नहीं आई। सुधा, तूने कहला भेजा कि सेन गुप्ता तुझे भूल जाए कहीं और नौकरी तलाश करे और तुझे भूल जाए ? सुधा तू कितनी बेदर्द थी !

परन्तु वह न कहीं और नौकरी प्राप्त कर सका, न तुझे भुला सका। एक मील से निकाले हुए, कम्युनिस्ट का तख्ता लगाकर निकाले हुए, क्लर्क के लिए किसी अन्य स्थान पर नौकरी प्राप्त करना असम्भव और तुझे भुलाना तो उससे भी अधिक दूर की बात थी। इसलिए सेन गुप्ता जीवन के सबसे बड़े झूठ के मृत सर्प को दिल के पौधे से लिपटाए, प्रायश्चित करने के लिए बंगाल से यू० पी० और यू० पी० से पंजाब आ गया—कॉलरिज के बूढ़े नाविक की भाँति वह अपने पाप को गले में लटकाए फिरता है—यह बंगाल नहीं है, पंजाब है!

और······"शाला, अमीर लोग गरीब को जीने नहीं देगा। उन्हें तो बम से उड़ाना चाहिए, बम से!"

सेन गुप्ता को स्त्रियों से घृणा है। वह हर नवयुवती को सुधा समझता है। हर लड़की स्वार्थी है, बेवफ़ा है, बेदर्द है। पत्थर का दिल रखती है और······"इस्त्री क्या है? आखिर उसकी जरूरत ही क्या है?" वह कहता है। इस बारे में उसके विचार मार्क्स और दूसरे साम्यवादी विचारकों से भी प्रभावित नहीं हुए। "आखिर इस्त्री क्या है?"

'इस्त्री' सुधा है! सुधा! जिसने सेन गुप्ता से जीवन-भर साथ निभाने का पावन वचन दे के मुंह मोड़ लिया। इस्त्री सुधा है। स्त्री आदमी की मां है, प्रेमिका है, पत्नी है और बेटी है परन्तु स्त्री बेवफ़ा है। सेन गुप्ता ठीक कहता है।

"आमी बंगाल सीखावो?" एक कामरेड लड़की उससे कहती है।

"नाईं······तुम पंजाबी सुन्दर भाषा बोलता है। बंगला में क्या है?······मैं पंजाबी सीखेगा। और······"

"और फिर पंजाबी लड़की से शादी करेगा?" वह हंसती हुई कहती है।

"नाईं ·· "सेन गुप्ता का चेहरा लाल हो गया है। ऐनक उतार कर वह एकटक उसे देख रहा है "नाईं, नाईं, नाईं !!!"

"अच्छा, भई अच्छा······" वह फिर कहती है, "मेरे सम्बन्ध में क्या विचार है ?"

सेन गुप्ता की गम्भीरता समाप्त हो जाती है। यह सबसे बड़ा मज़ाक है, जो उससे हुआ है। वह जोर से हँसता है। अब वह मज़ाक को मज़ाक के रूप में ही ले रहा है। इसलिए वह हँसते हुए ही कहता है "तुम दाल-भात-मछली खाओगी ?"

"हाँ······"

"बीड़ी पीने से रोकोगी तो नहीं ?"

"यह बात अलबत्ता है······"कामरेड लड़की जाट सिख है और सिग्रेट से घृणा करती है। "यह बात अलबत्ता है !"

"तो अपनी नहीं बनेगी !" वह हँसते हुए कहता है और फिर उस पंजाबी बोली का बंगला अनुवाद सुनाता है, जिसके बोल कुछ यूँ है :

"खट्टण गया ते खट के लिया आरा······

तेरी मेरी नहीं निभणी, तू ने सुना, मैं सुनाया ?······तेरी मेरी नहीं निभणी"

सुबह हुई है। सात बजे हैं। सेन गुप्ता ऐनक के शीशों को रूमाल से साफ करता हुआ बाहर निकला है। वह पलकें झपका रहा है। उसके चेहरे पर गर्मी से छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आई हैं। पंजाब का पानी उसे रास नहीं आया। आज अपनी दोस्त कामरेड लड़की के कहने पर वह सुधा को एक पत्र लिख रहा है। इन ग्यारह मास में प्रथम और अन्तिम पत्र। इस पत्र के लिखने के बाद वह जीवन के सबसे बड़े झूठ के मृत सर्प को हृदय की कोमल टहनी से उतार फेंकेगा। प्रायश्चित्त पूरा हो गया है। यह पत्र लिखने के बाद उसके हृदय का बोझ हल्का हो जाएगा और फिर शायद उसके हृदय की कोमल शाखा पर फिर से फूल आ जायें। शायद······शायद कामरेड लड़की जाट

सिख है तो क्या हुआ ? सुधा की तरह नहीं है ! और फिर बीड़ी पीना छोड़ देना इतना बड़ा काम नहीं, जितना ऊपरी दृष्टि में दिखाई पड़ता है।

पार्टी-दफ़्तर से उल्टे पाँव लौट आये। सुबह जंगली चिड़िया की भाँति फुदकती हुई आगे बढ़ रही है। डाक्टर का दरवाजा अभी बन्द है। पेंटर भी अभी तक नहीं आया। ड्योढ़ी चुपचाप है। फिर बाहर लौट कर सड़क पर आजाइए। जगदी उठ गया है। बिस्तर उसने लपेट कर विशन हलवाई की दुकान की अन्दर वाली कोठरी में रख दिया है। चारपाई खड़ी कर दी है। सड़क पर यातायात अब ज्यादा है। पालिश और मालिश वाले छोकरे अपने-अपने काग के बक्स उठाए आ बैठे हैं। सूर्य पूर्व से उदय होता है और सड़क के इस ओर भारत-पब्लिशर्ज के बाहर दोपहर ग्यारह बजे तक छाया रहती है। इसलिए फुट-पाथ पर अभी से पालिश वाले लड़कों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। आमों की तीन बड़ी ढेरियाँ रेढ़ी पर लगाए रामदास भी आ गया है। धूप सामने घंटाघर की चोटी, घड़ियों और ऊपरी मंजिल पर चमक रही है। धूप निकल आई है। इसलिए हीरो भी अपना पालिश वाला डिब्बा उठाए अपने स्थान पर आ गया है।

हीरो बम्बई से आया है। बम्बई में वह सब फ़िलम-ऐक्ट्रों और ऐक्ट्रेसों के जूते पालिश किया करता था। कम-से-कम यहाँ की पालिश-बिरादरी में वह इसी कारण प्रसिद्ध है। उसका पालिश का बक्स सबसे बड़ा है। चारों ओर विभिन्न मसालों की सफ़ेद, लाल और हर रंग की शीशियाँ लगी हैं। बक्स के ऊपर पाँव रखने के लिए बड़ी अच्छी जगह बनी है। उसके नीचे कम-से-कम एक दर्जन ब्रुश हैं। वह स्वंय बम्बई-कट बुशशर्ट और पतलून पहनता है। दिन में सात-आठ रुपये कमाता है। उसके पास चार आने से कम पालिश का कोई रेट नहीं। चार आने, छः आने, आठ आने और एक रुपया। विभिन्न प्रकार और विभिन्न ढंगों की पालिशों के ये ही रेट हैं।

"एक बार अपन सुरैया के सेंडल पालिश कर रहा था······ बाहर उसके बंगले की ड्योढ़ी में·······बंगला अंधेरी में है······ सुरैया किसी काम से बाहर आई। उसने वही सेंडल पहनने थे·······बूम नहीं मारता, सच कहता हूँ, बम्बे का सभी दादा लोग पहचानता है······ तो क्या हुआ कि साली मेरे पास खड़ी हो गई। देखती रही, देखती रही। मैं भी कभी एक मशाला लगाऊं, कभी दूसरा·······आध घंटा उड़ गया। बहुत खुश हुई। मुझे दस रुपये इनाम दिये!"

पालिश और मालिश वाले दूसरे छोकरे मुँह खोले, आश्चर्य से आँखें चौड़ी किए सुन रहे हैं। उन्हें उसके भाग्य पर ईर्ष्या होती है जो प्रत्यक्ष सुरैया के जूते पालिश करता रहा है। हीरो एक घटना और सुनाता है, "यूं हुआ कि अपन लोग वरली गए। आउट-डोर शूटिंग हो रही थी, आज की। नादिरा शाम के समय टहलती-टहलती आ निकली। कीचड़ से उसके जूते भर गए······बूम नहीं मारता, बम्बे का सब दादा लोग पहचानता है·······तो अपन ने कहा, आपके जूते चमका दूँ? आप घास पर बैठिए······। उसने जूते उतार दिए। मैंने पहले अपनी कमीज से साफ़ किए। वह देखती रही। फिर काम शुरू किया। आध घंटा, एक घण्टा, डेढ़ घण्टा गुजर गया। रात पड़ने लगी। मैंने जोड़ा चमकाकर और फिर आँखों से लगाकर उसके सामने रख दिया। इतनी देर में बहुत से लोग उसे ढूंढते हुए आ निकले। नादिरा ने सबसे मेरी प्रशंसा की और······" उसने अपना दायाँ हाथ बड़े प्यार से बायें कपोल पर रखा, यहाँ हाथ रखकर धीरे से चप्पत लगाई और ····"

"और······" वह जरा देर ठहरकर कहता है, "और वेही जूते मुझे इनाम में दे दिए! और पांव से नंगी वापस जाने लगी!"

"अच्छा······?' सबके मुँह से एक साथ निकला।

"हाँ······बूम नहीं मारता····· अपन लोग को बम्बे का सब दादा लोग जानता है······मैंने कहा, आप जूते न दीजिए! ये पहन लीजिए।

मेरा इनाम यही बहुत है कि आपने मेरी प्रशंसा की और मुझे शाबाशी दी।"

लड़के सभी कच्चे हैं, बच्चे हैं। हीरो से कोई नहीं पूछता, कि यदि ऐसी बात थी तो वह बम्बई से लौट कर क्यों आया? यहाँ नगर में क्या रखा था? यदि बम्बई में इतनी ऐश थी, इतना रुपया था, दादा लोग सभी पहचानता था, तो बम्बई से आने की क्या जरूरत थी?

परन्तु एक बात निश्चित है। हीरो पालिश करता है तो जूतों को नया जीवन मिलता है। उनमें से अपना मुँह देखा जा सकता है। अपना सब कुछ देखा जा सकता है! "एक बार यूँ हुआ······"हीरो सुनाता है, "कि नूतन की नौकरानी ने मुझे बुलाया कि मैं घर के पचास-साट जूतों पर पालिश कर दूँ। कुछ नूतन के थे, कुछ उसकी माँ के··· तो नूतन शाम की किसी पार्टी में जाने के लिए तैयार हो रही थी। जब वह साड़ी पहन कर बाहर निकली और बरामदे मे मुझे काम करते पाया तो उसे विचार आया कि जो सैंडल वह पहने हुए है, उन पर पालिश अच्छी नहीं है। वह रुक गई। साड़ी का छोर जरा-सा उठाकर उसने पांव बक्स पर रख दिया। मैंने पालिश शुरू की। उसने कहा, 'जल्दी!' मैंने कहा, 'बीबी जी, आधा घण्टा से कम नहीं लगेगा। आपकी मर्जी हो तो करवाइए।' वह हँसी और घड़ी देख कर कहने लगी, 'अच्छा करो, मेरे पास टैम है।' तो पालिश करनी शुरू की। ब्रुश साड़ी पर न फिर जाए, उसने थोड़ी सी और उठा ली। मैंने पालिश समाप्त की। जूते यूँ चमकने लगे कि सब कुछ दिखाई पड़ने लगा, सब कुछ दिखाई पड़ने लगा······"

कच्चे लड़के पूछते हैं, "क्यों?"

"मैंने कहा 'बीबी जी एक बात कहूं! बुरा तो नहीं मानेंगी' कहने लगी, 'कहो' तुमने काम बहुत अच्छा किया है। क्या बात है?' मैंने कहा, 'बस इतनी सी बात है, आपने आज अन्डरवीयर क्यों नहीं

पहना ?'......कह दिया, सच कहता हूँ, बूस नहीं मारता.......बम्बे का सब दादा लोग.......उसने पांव खीच लिया। पहले वह क्रोध से कांपने लगी। फिर बोली.......'बताओ, तुम्हें कैसे पता चला ?' मैंने धीरे से कहा, 'जूतो में से साफ़ नजर आता है !"

"फिर क्या हुआ ?"

"होना क्या था। उसी समय भीतर गई। साड़ी बदल कर आई तो हाथों में दस-दस रुपये के पांच नोट थे। इनाम दिया और बोली, 'मुझे भूल गया था। तुम तो सचमुच उस्ताद हो......"

—कच्चे लड़के वास्तव में कच्चे हैं। वे इन बातों को खुले मुँह, राल टपकाती जिह्वा और चकित दृष्टि से सुनते हैं। लड़के सचमुच कच्चे हैं। तभी तो हीरो के मुकाबले पर कभी नहीं बैठते। वे पालिश का एक आना लेते हैं और हीरो चार आने से कम कभी नहीं लेता। और फिर वह जाट वाली बात सभी को याद है। सब जानते हैं कि हीरो नियम का पक्का है।

एक बार गाँव से एक जाट आया। सिनेमा देखने से पूर्व उसने हीरो से अपना बूट पालिश करवाने के लिए उसके बक्स पर पाँव रखा। हीरो ने आधा घण्टा लगा कर आठ आने वाली पालिश की। जब पैसे देने का समय आया तो जाट ने दुवन्नी दी। बहस हुई। झगड़े तक बात पहुँची। जाट सच्चा था। सभी लड़के पालिश का एक आना लेते हैं और उसका परिश्रम ही देखकर ही उसने दुवन्नी देनी चाही थी। यदि वह आठ आने दे-दे तो सिनेमा कैसे देखे। झगड़ा बढ़ा। वह चार आने देने को तैयार हो गया परन्तु हीरो न माना। आखिर हीरो ने उसके बूट उठाए। नाली तक ले गया और कीचड़ से लिथड़े हुए बूट लाकर उसने जाट के सामने रख दिये और कहा, "अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए......"

× × ×

हीरो अपना बक्स लेकर आ गया है। इस समय भी वह कोई

किस्सा ही सुना रहा है। उसके गिर्द बेकार लड़कों का गिरोह एकत्रित है। सब्जीमण्डी से फलों और सब्जी से लदे हुए रिक्शे और रेढ़ियाँ आ रही हैं। सड़क पर सब ओर गहमा-गहमी है, परन्तु अभी होटल बन्द हैं। केवल हलवाइयों की दुकानें खुल गई हैं। दातुन बेचने वाले कुछ भील लोग और उनकी स्त्रियाँ सामने गोल चक्कर की पटरी पर बैठे हैं। बीड़ियाँ सुलगाकर वे किसी विचित्र-सी बोली में बातें कर रहे हैं। उनके बाल बिखर गये हैं। चेहरों पर विचित्र सी काली उदासी है।

गुप्ता पनवाड़ी की दुकान खुल गई है। राम बिलास ने बाहर अंगीठी सुलगाकर उस पर कत्था बनाने के लिए मसाला चढ़ा दिया है। उसके साथ जगतसिंह ने भी अपनी दुकान खोल दी है। घण्टाघर के चौक में चारों ओर हलवाइयों की अंगीठियाँ सुलगने लगी हैं। धुआँ फैल रहा है।

भोंदू जमादार झाड़ू लगा रहा है। उसकी कमर दोहरी हो गई है। वह सीधा खड़ा नहीं हो सकता। इस समय वह बड़ी तेजी से काम कर रहा है। उसकी झाड़ू से उठी हुई धूल और अंगीठियों का धुआँ आपस में घुल-मिल गए हैं—चौक घण्टाघर धूल और धुएँ में आँखें मलते हुए—जग रहा है। वह सुबह जो आदिम सुबह की तरह सुन्दर थी, और इतनी कोमल थी कि उसका सुगन्धित साँस हर तरफ अठखेलियाँ कर रहा था, अब दिन की गोद में लोटने लगी है। दिन जिसमें लू है, गर्मी है, धूल है और काम है, जिसे करते हुए खून-पसीना एक हो जाता है, परन्तु फिर भी भर-पेट रोटी प्राप्त नहीं होती।

× × ×

भरपेट रोटी भोंदू जमादार को कभी-कभी प्राप्त हो जाती है। इसलिए वह जीवन से असन्तुष्ट नहीं है। केवल बेगाना है और जीवन को अपनी पत्नी पारो की तरह समझता है, जो सारी आयु लाला गिरधारीलाल की गोद गर्माती रही। यदि पारो लाला गिरधारीलाल से प्राप्त कपड़ों और छोटे-मोटे आभूषणों के बदले अपना सब कुछ उसे

देती रही और भोंदू को कभी शिकायत पैदा नहीं हुई तो जिन्दगी से उसे क्या शिकायत हो सकती है। उसके लिए जिन्दगी भी प्यारी ही है।

इसलिए वह पूरे बल से झाड़ू लगा रहा है। जगतसिंह की दुकान खुलते ही उसने आधी चाय पी है। फिर एक पान खाया है। ऊपर से सुपारी चबाने के लिए मुँह में रखी है और फिर काम में जुट गया है। सड़क पार पिशावर होटल और फलों की दुकानों वाले लोगों से उसे घृणा है। रात ग्यारह बजे के समीप वे भीतर से गन्दगी निकालकर बीच सड़क में ढेर लगा देते हैं और सुबह जब भोंदू आता है तो उसकी म्यूनिसिपेल्टी से मिली हुई पुरानी हथ-रेढ़ी भर जाती है। झुकी हुई कमर और ज्यादा झुका कर वह काम करता रहता है, यहाँ तक कि नौ बज जाते हैं और वह जगतसिंह से आधी चाय और दो बंद लेकर नाश्ता करता है; फिर रामबिलास से तीन पान बनवाता है। एक मुँह में लेता है और दो जेब में उड़स लेता है— शाम को भोंदू फिर आएगा। एक बार फिर सफाई करेगा और·······

जहाँ किशन हलवाई की दुकान है, उसकी बिलकुल सीध में सड़क पार की जाए तो अगला फुट-पाथ पार करने के बाद क्राकरी की बड़ी दुकान मिलती है। बायें हाथ एक खराद का कारखाना है। दायें ग्यानी होटल और उसके साथ साइकिल मरम्मत की दुकान छोड़कर रोज़ा होटल।

रोज़ा होटल !

चौक घण्टाघर की चार सड़कों पर और इन चार सड़कों की बारह छोटी-छोटी गलियों में यदि चाय की दुकानें और होटल गिने जायँ तो सौ से क्या ही कम होंगे। हर एक अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है। आस-पास की दुकानों, राहगीरों और रोज के ग्राहकों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए, हर दुकान, हर होटल अपनी-अपनी जगह महत्वपूर्ण है, परन्तु रोज़ा होटल का महत्व अपना ही है। उसके

मालिक, मालिक के बेटे और उसके बैरों का महत्व भी अलग है। कोई उनकी महत्ता के बराबर या निकट होने का दावा नहीं कर सकता—रोज़ा होटल।

"ओ ए इन्द्रू, हरामजादया !" जोड़ों के दर्द से बेचैन बूढ़ा मोटा मालिक कुर्सी की गद्दी पर बैठे-बैठे ही आवाज़ देगा।

"हाँ जी ! आया जी !" आवाज़ भीतर वाले इकलौते कमरे से आएगी, जिसमें तन्दूर है, एक चूल्हा है, विभिन्न सब्ज़ियाँ पड़ी हैं। एक ओर टोकरी के नीचे दो मुर्गे बन्द हैं और इन सबके बीच में, एक बोरी पर इन्द्रू बैठा प्याज चीर रहा है।

"ओए हरामजादया ! अजे तुम से प्याज नहीं चीरे गए ?"

"आता हूँ जी !" आवाज फिर आयेगी। जोड़ों के दर्द से बेचैन बूढ़े मालिक ने यह आवाज़ सुनी है, परन्तु वह बड़बड़ाहट नहीं सुनी जिसमें उसके लिए घृणा का प्रकटीकरण है, गालियाँ हैं। अपनी भूख और ग़रीबी की शिकायत है और वह सब कुछ है, जो यदि इन्द्रू के मुख से उड़कर मालिक के कानों तक पहुँच जाए, तो न मालूम क्या हो जाए।

रोज़ा होटल, लम्बाई में कम और चौड़ाई में अधिक, एक हॉल कमरा, पुरानी छत जिसके नीचे स्थान-स्थान पर मोटे कपड़े लगा दिये गये हैं, ताकि मिट्टी गिरे तो ग्राहकों पर न पड़े। प्रविष्ट होते ही दायीं ओर पतीलियों की पंक्ति और उनके बीच में एक अँगीठी। साथ ही हैंड-पम्प। बायीं ओर चाय के प्यालों की पंक्तियां, सोडे की बोतलें और साथ ही चाय का पानी उबालने के लिए एक अँगीठी। मोटा बूढ़ा मालिक भी बायीं ओर ही बैठता है। उसके शरीर के निचले भाग में गठिया इस सीमा तक बढ़ गया है कि उठना कठिन है। बड़ी कठिनाई से गद्दीदार कुर्सी पर से लाठी के सहारे उठता है, चलता हुआ सड़क तक पहुँचता है और घर जाने के लिए रिक्शा में बैठ जाता है। होटल से घर तक और घर से होटल तक आना एक पहेली है। एक मुसीबत

है। फिर भी आता है। कुर्सी पर बैठता है। हर आने-जाने वाले को बड़ी मीठी आवाज़ से 'नमस्ते जी' कहता है और भायँ-भायँ करते हुए हॉल कमरे में जब एक अकेला ग्राहक बैठ जाता है, तो······

'ओए इन्द्रू ! हरामजादया ! अभी तुम से प्याज नहीं चीरे गए !"

डाक्टर कहता है, "लाला जी, रोटी कम खाओ, कुछ मुटापा कम हो तो गठिया का दर्द भी कम हो"—लाला जी रोटी कैसे कम खा सकते हैं। मुर्ग का शोरवा या सालन यदि बच जाए तो क्या इन हरामजादे मुफ़्तखोर बैरों को खिला दें, या चार-चार आने प्लेट की आवाज़ देकर बेचना आरम्भ कर दें। स्वयं न खायें, तो क्या करें ? सारी आयु खाया-पिया है और अब अन्तिम दिनों में ऐसा परहेज़ करें। इससे तो मरते मर जायें, अच्छा है। लाला जी रोटी कम कैसे खा सकते हैं ? हाँ, यदि रोटी का तात्पर्य चपाती से है तो वह लाला जी एक समय में छः से अधिक नहीं खाते। छः तो कोई ज्यादा नहीं है ना ?

रोज़ा होटल के भीतर प्रविष्ट हों तो दाहिने हाथ पर दो केबिन है, जिनमें पुरानी बाज़ू वाली बैठने की कुर्सियाँ और, एक-एक मेज़ पड़े रहते हैं। हॉल में केवल तीन मेज़ हैं। स्थान ही बहुत कम है। पीछे बिलकुल पीछे दीवार के साथ एक गैलरी है, चार सीढ़ियाँ चढ़कर इस गैलरी पर चढ़ा जाता है। ऊपर टेबिल-फेन लगा है। मेज़ रखी है, जिसके गिर्द छः कुर्सियाँ रखी हैं। यहाँ विशिष्ट ग्राहक आते हैं व खास ग्राहक !

रोज़ा होटल में ग्राहकों को तीन भागों में बाँटा जाता है। एक तो वे भूले-भटके यात्री हैं, जो खाना खाने के लिए दोपहर या शाम को सादा होटल समझ कर आते हैं। उन्हें दो में से किसी एक केबिन में बिठाया जाता है। खाना दिया जाता है। मीट की एक प्लेट का आर्डर हो तो स्पेशल चिकन की प्लेट भेजी जाती है। बड़े प्यार से

कहा जाता है, "आज आप पहली बार आये हैं, यह भी खा कर देखिए। हमारी स्पेशल डिश है!' और जब खाना समाप्त हो जाता है और डेढ़ रुपये की आशा करने वाले ग्राहक के पास तीन रुपये बारह आने का बिल पहुँचता है, जिसमें आठ आने उस सलाद के भी होते हैं जिस पर रोज़ा होटल का कुल खर्च दो पैसे है, तो...... ग्राहक चाहे नाक-भौं चढ़ाए, चाहे इस चरके को सहन करके हँसते हुए चेहरे से पलेट में पाँच का नोट रख दे, परन्तु रोज़ा होटल ने एक ग्राहक से इतना कमा लिया, जितना साधारण दूसरे होटल तीन ग्राहकों से कमाते हैं—दूसरी प्रकार के ग्राहक खास ग्राहक हैं। रंग की दुकान वाला नवयुवक सुमेरसिंह या कपूर साहब या रेवाड़ी साहब। जो रोज़ा होटल पर सप्ताह में केवल एक-दो बार ही आते हैं, परन्तु जब आते हैं तो उनके साथ एक मोटी आसामी होती है, शराब की बोतल होती है और रोज़ा होटल पर कम-से-कम दो घंटे बैठने का वचन होता है। इसलिए जब वे आते हैं, तो इन्द्र एक कार्य-कुशल शिकारी की तरह चौक घण्टा-घर के चारों ओर दृष्टि दौड़ाता है कि कहीं ऐक्साइज़ स्टाफ़ का कोई आदमी सादे कपड़ों में न खड़ा हो। फिर बोतल लेकर अपने पाजामे के टुब्बे में उनस लेता है। एक बार फिर चारों ओर देखता है......खास ग्राहकों को ऊपर गैलरी में बिठाता है, मुस्कराता है, हँसता है, आर्डर लेता है और फिर वाकई नीचे से गिलास और सोडा ले जाता है। मीट और सलाद की प्लेटें ले जाता है। टुब्बे से बोतल निकाल कर गिलासों में उँडेलता है। फिर कार्क लगा कर बोतल वहीं उनस लेता है। वह बोतल मेज पर नहीं रहने देता। यदि ऐक्साइज़ वाले आ जाएं तो ग्राहक तत्काल गिलास में पड़ी शराब गले के नीचे उतार सकते हैं, परन्तु बोतल हो तो चालान निश्चित है। इसलिए इन्द्र बोतल मेज पर नहीं रहने देता—तीसरी प्रकार के ग्राहक भी रोज़ा होटल के परिचितों में से हैं। वे प्रायः प्रतिदिन ही आते हैं, आस-पास की दुकानों पर काम करने वाले शाप ऐसिस्टेंट, क्लर्क या छोटे-मोटे दुकानदार जो

नित्य शाम को आते हैं। बाहर किसी मेज पर बैठकर चाय पीते हैं, अखबार पढ़ते हैं और फिर चले जाते हैं। इनसे रोजा होटल के मालिक को ज्यादा आय नहीं होती, परन्तु फिर भी ये ग्राहक होटल का एक आवश्यक भाग हैं। इनसे होटल भरा-भरा दिखाई पड़ता है और उन्हें बैठे देखकर कुछ और ग्राहक भी आ जाते हैं। इन्हीं ग्राहकों से वह दुख: सुख की बातें भी करता है। अपनी बीमारी, घर के कष्ट, ऐक्साइज और पुलिस की ज्यादती, काम की कमी……

"ओए मैं बाल बच्चेदार …… ओए मैं मांयाह शरीफ़ आदमी। दे ऊपर छापा? ओए कुत्ते ने बच्च गो, मेरे ऊपर छापा?"

ग्राहक उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता है तो वह चाय का प्याला तैयार करते हुए इन्द्रू से कहता है, "ओए हरामज़ादया, चीनी कम डालना, बाबू साहब चीनी कम पीते हैं, ज्यादा न हो जाए।"

या फिर काम की कमी का रोना रोते हुए कहता है, "परमात्मा का दिया सब कुछ है। मैं मांयाह महाजन आदमी हूँ। अब इस आयु में भी काम किये बिना बैठ नहीं सकता। लड़का है, केवल उसके कंधों पर भी काम का बोझ नहीं डाल सकता। परन्तु काम कम है। ग्राहक शो-शाँ देखकर आते हैं। रेडियोग्राम हो, चटपटे गाने हों, तो ग्राहक आते हैं। मेरे पास कोई आ जाए और कहे अमुक गाना सुनवादो तो मैं कहता हूँ, आप पिशावर-होटल पर जाइए, वहां सुनिए अपनी पसंद के गाने! मेरे पास रेडियो है, जो प्रोग्राम हो रहा है, वही सुनवा सकता हूँ!"

और इतने लम्बे भाषण के बाद उसका साँस फूल जाता है तो वह गद्देदार कुर्सी पर 'फूँ' करके फिर पीठ लगा देता है और अपने जैसे ही डील-डौल वाले लड़के को सम्बोधित करके कहता है, "निक्का जी, ज़रा जाना तो भारत-पब्लिशर्ज के हरीश को देखना। कहीं कुत्ते का बच्चा भाग तो नहीं गया। आज उसे तनख़्वाह मिलनी है। पाँच रुपये आठ आने का बिल है!"

निक्का जी पतलून की जेबों में हाथ डाले निकलते हैं। सामने सड़क पर भारत-पब्लिशर्ज़ की ओर देखते हैं। हरीश बाहर नहीं निकला है। शायद वेतन लेकर खिसक ही गया हो, "अभी आनन्द साहब निकलेंगे, तो उनसे पूछेंगे।"

रोज़ा होटल ग्रेट है। जहाँ दिन भर में पन्द्रह से अधिक ग्राहक नहीं आते, फिर भी काम चल रहा है। रोज़ा होटल का मालिक ग्रेट है, बैरे ग्रेट हैं, सभी ग्रेट हैं।

"ओए मैं बाल-बच्चेदार······ओए मैं माँयाह् शरीफ़ आदमी, मेरे ऊपर छापा ? ओए कुत्ते ने बच्चयो !"

परन्तु अभी तो रोज़ा होटल खुला ही नहीं है। अभी तो केवल सात बजे हैं। सुबह हुई है। केवल सात बजे हैं। आठ बजे के लगभग इन्द्रू होटल की छत पर जायेगा, फिर नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर नीचे उतरेगा और होटल के तख्ते खोल देगा। इतनी देर में दो छोटे बैरे और आजायेंगे। झाड़ू लगाई जायेगी। कुर्सियाँ झाड़ी जायेंगी। फिर अंगीठी सुलगाकर कोयले डाल दिए जायेंगे। इन्द्रू प्याज चीरेगा इतनी देर में मालिक जैसा ही उसका राक्षसी शरीर वाला बेटा आ-जायेगा। उसके थैले में कुछ अंडे होंगे। हाथ में एक बर्तन होगा, जिसमें दूध पर आई हुई मलाई घर भेज दी जायेगी। इन्द्रू सब्ज़ी लेने जाएगा, तो होटल का चार्ज उसके हाथों से निकल जायेगा—सुबह शुरू होगी। सात बजे के बाद रोज़ा होटल की सुबह शुरू होगी। रोज़ा होटल की सुबह शुरू करना इन्द्रू के हाथ में है—अभी वह सोया पड़ा है !

इन्द्रू !

रोज़ा होटल का मालिक कहता है इन्द्रू उसके पास गत पन्द्रह वर्षों से है। 'हजारा में, धर्मशाला में—जहाँ भी अपना होटल रहा है इन्द्रू अपने साथ रहा है। हरामज़ादे की शादी भी इन्हीं हाथों से की।

अब बाल बच्चेदार है तो हरामजादा आँखे दिखाता है। काम नहीं करता !"

काम नहीं करता। आँखों के दीदे फैल गये हैं। किसी बीयर-शाप या बड़े होटल में जाकर ऐश करना चाहता है। रोज़ा होटल उसके लिए तंग हो गया है। बड़ा आदमी बनना चाहता है। हरामज़ादे का जी चाहता है कि उसके बच्चे कान्वेन्ट स्कूल में पढ़ने जायें। अच्छे कपड़े पहनें। हरामजादा चाहता है उसकी पत्नी बाजार में सैर करने जाये। स्वयं भी अच्छे कपड़े पहने। सप्ताह में एक दिन छुट्टी करे। रोजाना मीट के साथ पाव भर शराब पिये। हरामज़ादा !

हरामज़ादा कहता तो ठीक ही है। उसकी आयु तीस वर्ष होने को आई। पन्द्रह वर्ष बैरागीरी करते हो गये। पन्द्रह वर्षों में एक बैरा इतने रुपये कमा लेता है कि एक मकान बनवा ले। एक होटल खोल ले या एक दुकान ही शुरू कर ले। और इन्द्र है कि महीने की वही तीस रुपये तनख्वाह है। वही दस-बारह महीने का टिप है। वही आमदनी है। वही खर्च ज्यादा है। उधर पिशावर होटल के बैरे हैं, पेंतालीस से कम वेतन नहीं लेते। पाँच-पाँच रुपये रोज का टिप बनाते हैं। हरामजादा करे तो क्या ? इसलिए वह गम्भीरता से सोच रहा है कि रोज़ा होटल छोड़कर किसी बड़े होटल में नौकरी कर ले। ग्रीन के बैरों की तरह वह भी टाई लगाकर और सफेद कपड़े पहन कर काम करना चाहता है। उसे गठिया-पीड़ित बूढ़े मालिक की गालियाँ पसन्द नहीं। उसके बुलाने का ढंग भी पसन्द नहीं। वह उनसे घृणा करता है। उसे हर उस व्यक्ति से सहानुभूति है जो उनसे घृणा करता है।

इसीलिए उसे हरीश से सहानुभूति है !

हरीश !

× × ×

ईश्वर-प्रदत्त आवारगी के राज्य का राजकुमार हरीश सामने भारत-पब्लिशर्ज़ की दुकान पर ऐसिस्टेंट है। साठ रुपये मासिक वेतन पाता

है। आठ घण्टे काम करता है। आठ घण्टे आवारगी करता है और आठ घन्टे सोता है। हरीश जिसका कोई घर नहीं है। जिसके पास कोई सामान नहीं है। कोई नियमित रोटी का प्रबन्ध नहीं है। जीने और—जिंदा रहने का ही कोई नियमित प्रबन्ध नहीं है। हरीश, ईश्वर-प्रदत्त आवारगी के राज्य का राजकुमार—जिसने रोजा होटल के पंद्रह रुपये बारह आने कर्ज देना है और चूँकि वह कर्ज अदा नहीं कर सकता और चूँकि उसे भी इस कारण बूढ़े गठिया-ग्रस्त मालिक से घृणा है, और चूँकि वह इस घृणा की अभिव्यक्ति इन्द्र के सम्मुख कई बार कर चुका है, इसलिए इन्द्र को उससे सहानुभूति है—वह यथा-सम्भव उससे स्वयं तक़ाज़ा नहीं करता। यह काम निक्का जी या फिर बूढ़े 'भाया जी' पर छोड़ देता है।

लगभग दो वर्ष हुए, भारत-पब्लिशर्ज की दुकान पर किसी दूसरी बड़ी फर्म का एक एजेन्ट आया था। उसके पास अपने प्रकाशनों और विभिन्न पुस्तकों के नमूनों का बड़ा काला बक्स था। बक्स एक अल्पायु मजदूर ने सिर पर उठा रखा था। जब ऐजन्ट अपना बक्स खोलकर किताबों के नमूने दिखाने लगा, तो गुरमुखसिंह और उसके ऐसिस्टेंट चिरञ्जीत ने देखा कि अल्पायु भद्दा-सा मजदूर लड़का बड़ी रुचि और बड़ी अभिलाषा-युक्त दृष्टि से पुस्तकों की ओर देख रहा है। वे चौंके जरूर परन्तु बौखलाये उस समय जब उस लड़के ने पास आकर अत्यन्त शिष्ट भाषा में पूछा, "आपके पास कृष्णचन्द्र की शिकस्त है?"

चिरंजीत और गुरमुखसिंह ने उसे सिर से पाँव तक देखा, भद्दा सा अल्पायु लड़का, रूखे बाल, काली रंगत, कठोर और छोटी-छोटी आंखें, चूहे जैसे पतले सफेद दाँत, जीर्ण कुर्त्ता और पाजामा,—पाँव में कपड़े के बूट और अभी उनके आश्चर्य का पहला दौर दूर भी न हुआ था कि उसने फिर कहा, "आपमें से किसी ने राईडर हैगर्ड की 'शी' पढ़ी है?"

चिरंजीत, जो अपने साहित्यकार होने के गर्व में अपना अध्ययन

ग्रौर ग्रध्ययन का गर्व रखता था, पाँव पर लड़खड़ा गया। सारी दुनियाँ की बातों में और सारी दुनियाँ के मनुष्यों में यदि एक मजदूर लड़का ही ग्राकर यूं रोब डाल जाये तो बात कुछ न हुई।

उसने पूछा, "लड़के तुम्हारा नाम क्या है ?"

"नाम से क्या ग्रन्तर पड़ता है ?" उसे उत्तर मिला, "ग्राप देख ही रहे हैं मैं एक बेकार ऐजूकेटेड यंग ग्रादमी हूँ"। उत्तर रोचक था ग्रौर इतना रोचक था कि गुरमुखसिंह ने ग्राँख उठाकर उसे देखा और कहा, "तुम शाम को आना। तुम्हें ग्रगर नौकरी की जरूरत हो तो हम ग्रपनी तसल्ली करने के बाद तुम्हें रख लेंगे।"

ग्रौर हरीश यूँ भारत पब्लिशर्ज पर नौकर हुग्रा, परन्तु जैसे जोंक रक्त का नियमित भोजन मिलते रहने पर मोटी होती जाती है ग्रौर ग्रपने छोटे से स्थान में समा नहीं सकती, उसी प्रकार हरीश के दस-बारह दिनों में पर निकालने लगे। बाजार के ऋणदाताग्रों से मुक्ति दिलाने के लिए पहले दस दिनों में ही गुरमुखसिंह ने उसे एक मास का वेतन पेशगी दे दिया। एक कमरा भी किराये पर ले दिया। एक होटल में पच्चीस रुपये मासिक पर रोटी का प्रवन्ध भी कर दिया, परन्तु कर्ज लेने वाले थे कि बढ़ते ही रहे। यूँ होने लगा कि दुकान पर गहमागहमी है। हरीश साहब किसी हैडमिस्ट्रेस को पुस्तकें दिखा रहे हैं ग्रौर बाहर हरीश से कर्ज लेने वाला एक दुकानदार खड़ा है जो ग्रांखों-ही-ग्राँखों में उसे समझा रहा है कि यदि ग्राज भी उसका कर्ज ग्रदा न हुआ तो वह उसके कपड़े उतरवा लेगा......

जोंक फैलती गई। चालाक ग्रौर बातूनी होने के कारण उसके गिर्द नवयुवकों की एक मंडली इकट्ठी हो गई। हरीश का गुजारा चलने लगा, परन्तु कब तक ? गुरमुखसिंह को संदेह हुग्रा कि दुकान की किताबें नौजवान ग्राहक लड़कियों को मुफ्त में उठाकर दे दी जाती हैं। चिरंजीत को महसूस हुग्रा कि हरीश उसका नाम ग्रौर उसकी साहित्यिक ख्याति का उपयोग करके नवयुवक लड़कों से पैसे बटोरता है ग्रौर उनसे

वायदे करता है कि उनकी कहानियाँ और कविताएं देश की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित करवा देगा और भारत-पब्लिशर्ज़ से उनकी किताबें छपवाने का प्रबन्ध कर देगा—जोंक फैलती रही। बाज़ार का क़र्ज़ा बढ़ता रहा। धोबी के पन्द्रह रुपये, चाय वाले के तीस रुपये, सिग्रेट की दुकान के बारह रुपये, होटल वाले के दो मास के पचास रुपये। यहाँ, वहाँ, इधर-उधर विभिन्न दुकानों के चार-चार, पांच-पांच रुपये वेतन पेशगी में ही कट जाता। मालिक मकान ने बिस्तरा किराये में ही ज़ब्त करके निकाल बाहर किया—परन्तु······

परन्तु ईश्वर-प्रदत्त आवारगी के राज्य का राजकुमार उसी प्रकार अपने स्वभाव पर अचल रहा। तभी तो रोज़ा होटल का बूढ़ा, 'भापा जी' हाथ उठाकर कहता है, "निक्का जी, ज़रा भारत पब्लिशर्ज़ पर देखना तो सही, हरीश को तनख़ाह मिल गई होगी!"

उसे इस बात का बिलकुल ज्ञान नहीं कि हरीश को वेतन नहीं मिलता। वेतन वाले दिन जब हिसाब होता है तो एडवांस वेतन से कुछ अधिक ही होता है और गुरमुखसिंह उसे देखकर कहता है, "ओए सोहरी दिया, कुत्तया, कुछ ध्यान से खर्च किया कर!"

और हरीश, जिसने किताबों की दुकान पर आकर प्रसिद्ध लेखकों और विचारकों के नाम और उक्तियाँ सीख ली हैं, कहता है, "सरदार जी, मैं तो क्षणों में जीने वाला व्यक्ति हूँ—जीनपाल सार्त्र के कथनानुसार!"

"चल हरामज़ादे!" गुरमुखसिंह कुछ क्रोध और कुछ मज़ाक में कहता है।

× × ×

हरीश महान् है। उसे मानने वाले नवयुवक लड़कों की मंडली महान् है "लीजिए······अब सुदर्शन जी भी कहते हैं कि उनकी कोई पुस्तक पंजाबी में अनुवाद करवाकर छपवाऊँ······परसों कृष्णचन्द्र का पत्र भी आया था!" और वह वाक़ई जेब से एक पत्र निकालकर

मित्रों को दिखा देता है "सब समझते हैं कि जैसे मेरे पास बहुत अधिक समय है।" वह विरक्ति से कहता है।

हरीश महान् है "देख री······" उसने एक बार मित्रों के सम्मुख एक लड़की की नकल करते हुए बताया, "देख री······वह लड़का है न री······जो सामने भारत पब्लिशर्ज़ की दुकान पर खड़ा सिग्रेट पी रहा री। वह तेरा स्वीट है री······?" कौन जानता है कि वह लड़की उसे जानती भी है या नहीं और यह बात उसके अपने खुश-फ़हम—क्षणों की उपज है।

हरीश महान् है "यार······" उसने एक बार अपने से सीनियर कार्यकर्त्ता सुदर्शन से कहा, "यार······अब लोगों से उधार लेने का कोई मज़ा नहीं रहा, कोई मज़ा नहीं रहा ·····लोग कुछ दिनों के बाद वापिस माँग लेते हैं!"

हरीश महान् है, "हरामज़ादे! ज़रा मुझे बड़ा हो लेने दे। मैं तुझे बड़ा होकर मार ही न डालूं तो······" उसने चिरंजीत की पकड़ से निकलते हुए दूर भाग कर कहा। चिरंजीत से झगड़ा बिलकुल व्यक्तिगत था। परन्तु जब उसे मार पड़ी तो उसने उसी शाम सम्मिलित मित्रों की एक टोली में कहा, "आज मैंने साम्यवादियों को भी देख लिया ······साले बड़े साम्यवादी बने फिरते हैं!"

हरीश महान् है। "एम० ए० में पढ़ता है लड़का, एम० ए० में ······प्रिंस होस्टल में रहता है। जब जाता हूँ, मार्ग में स्वयं ही टक शाप पर कह जाता हूँ, हॉफ सैट चाय और आमलेट यश के कमरे में भिजवा देना—सम्मान करते हैं लोग!"

ईश्वर-प्रदत्त आवारगी के राज्य का राजकुमार हरीश महान् है। उसकी आदतें भी महान् हैं, बातें भी महान् हैं, परन्तु अब जोंक बहुत मोटी हो गई है और गुरमुखसिंह को यह प्रतीत हो रहा है कि हरीश का स्थान उसके लिए तंग हो गया है। इसलिए या तो उसे बड़ा स्थान मिल जाएगा और चिरंजीत चला जाएगा या वह स्थान की खोज

में फिर किताबों के एजेन्टों के ट्रंक उठाना आरम्भ कर देगा। कुछ भी हो, फिर भी हरीश की मित्र-मंडली अचल है। उसके अनुयायी जीवित हैं। बातें जवान हैं और वह किसी भी दुकान पर फटे-पुराने कपड़े पहने जाकर पूछ सकता है,

"आपके पास कृष्णचन्द्र की शिकस्त है ?"

और "आपने राइडर हैगर्ड की 'शी' पढ़ी है ?"

सुबह दिन की गोद में लोटने लगी है !

जगदीश हाथ मुंह धोकर फिर आ गया है और गुसा पनवाड़ी के बाहर पड़ी लोहे की कुर्सी पर बैठ कर चौथी बार चाय पी रहा है। गोल चक्कर की पटरियों पर भांति-भांति की बोलियाँ सुनाई दे रही हैं। अभी धूप नहीं आई है। इसलिए बहुत से लोग बैठे हैं। सामने बेअंतसिंह रिटायर्ड पोस्ट मास्टर बैठा है—अखबार देख रहा है। वह प्रतिदिन सुबह सैर से लौटने पर आधा घंटा इस पटरी पर बैठकर आराम करता है। मदन अखबार वाले से अखबार लेता है। पढ़ता है, जाते हुए अखबार और दो पैसे उसे दे-देता है—बूढ़ा मगनलाल उससे तनिक हट कर बैठा है। उसके हाथों में उसका पुराना कपड़े का बोर्ड है। बाँस की दो छड़ियों के बीच में कपड़ा सी कर उस पर लिखा गया है, 'खुजली, दाद, चंबल की शर्तिया दवा—माजुजनी—मूल्य एक पुड़िया, केवल चार आने। आराम न होने पर मूल्य वापस"। इसके साथ ही नीचे उसकी दूसरी आश्चर्यजनक दवाई का विज्ञापन है, "कमजोरी, नामर्दी, धातुरोग, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन की प्रभावशाली औषधि, संजीवनी, मूल्य पूर्ण सेट दस रुपये, नमूने की शीशी एक रुपये में !" बूढ़ा मगनलाल गत सात वर्षों से इसी स्थान पर बैठता है। ग्यारह बजे के लगभग जब धूप आ जाती है तो वह उठकर बाजार की ओर धीरे-धीरे थके पगों से लौट जाता है। गत सात वर्षों में शायद उसकी दवाइयों की एक शीशी भी नहीं बिकी, परन्तु इसके बावजूद वह अत्यन्त नियमितता से सुबह इस जगह आता है। कहते

हैं, उसका एक लड़का टेलीफून ऐक्सचेंज पर नौकर है और वह उसे यह कार्य करने से रोकता भी है परन्तु यह काम मगनलाल की ज़िन्दगी है। इसे छोड़ दे तो क्या मर जाये ?

उसके साथ ही एक झगड़ा हो रहा है। परन्तु नहीं, झगड़ा नहीं, सौदा है। कीकर की लम्बी-लम्बी कांटेदार टहनियाँ रखे एक भील पति-पत्नी बैठे हैं। उनसे एक पंजाबी बूढ़ा पूरे गट्ठे का सौदा कर रहा है। बूढ़ा स्वयं शाखाएं काटने बाहर जंगल में नहीं जा सकता। वह प्रतिदिन सवेरे यहाँ आता है और इसी तरह एक गट्ठा ख़रीद कर लेता है। फिर दराँती से कांटे और पत्ते साफ करने के बाद उनकी छोटी-छोटी दातुनें काटता है और फिर उन्हीं के मुकाबले में शाम को रखकर बैठ जाता है—"आने की छः छः, छः छः !" इस समय वह उस गट्ठे के ढाई रुपये देने को तैयार है, "ले-लो, ले-लो, सारे दिन का परिश्रम, बक-बक बच जायेगी। ले-लो, मुफ़त के है"। आदमी कुछ नहीं कहता। वह चुप है। अलबत्ता उसकी स्त्री मानने के लिए तैयार नही है, "नहीं, तीन रुपया आठ आना ! इससे कमती नहीं · "
बूढ़ा अपने पैसे फिर जेब में डालने का दिखावा कर रहा है। एक क्षण के लिए स्त्री की आँखों की वह चमक जो रुपये के दो नोटों और मुट्ठी भर रेजगारी सामने होने के कारण उत्पन्न हुई थी, बुझ-सी गई है परन्तु बूढ़े ने उसे नहीं देखा। यदि वह देख लेता तो एक पैसा भी अधिक न बढ़ता। परन्तु अब उसने जेब में हाथ डालते-डालते चार आने और निकाल लिये हैं। "पौने तीन रुपये······" उसने भील पुरुष की मुट्ठी खोल कर उसमें रुपये डाल दिये हैं और बढ़ कर गट्ठा उठाने लगा है। "नहीं, नहीं, कमती नहीं······" स्त्री अब भी कह रही है, परन्तु उसके विरोध में वह तीव्रता नहीं, वह जोर नहीं, वह जान नहीं, वह शक्ति नहीं। उसके पति ने पैसे ले लिये हैं और गिन रहा है और गिन कर उसे दे रहा है। सहसा स्त्री के चेहरे पर प्रसन्नता की एक लहर उभर आई है। उसने नोटों और रेजगारी की

ओर यूं देखा है जैसे चाँद पर पहुँचने वाला सबसे पहला व्यक्ति वहां हीरों की खान को देखेगा। वह हँसने लगी है। उसने सबके सामने ही अपने पति के गले में बाहें डाल दी हैं—उसे भींच रही है। उसकी अपनी गोद में पड़ा बच्चा भी जैसे जाग उठा है—'तत् तत्, बेशर्म, सबके सामने ही······" बेअन्तसिंह रिटायर्ड पोस्ट मास्टर ने अखबार का अन्तिम पृष्ठ पढ़कर ऐनक उतार दी है और बड़ी ही श्रद्धा-भरी दृष्टि से उन दोनों की ओर देख रहा है परन्तु मुँह से "तत् तत्, बेशर्म, सब के सामने ही······"

कान की मैल साफ करने वाले दो पतले-पतले व्यक्ति इकट्ठे बैठे हैं। उनके चेहरे और शरीर इतने पतले हैं कि देखने से डर आता है परन्तु फिर भी वह बीमार या दुर्बल दिखाई नहीं पड़ते। काला रंग और उस पर लाल परनों के छोटे-से कपड़े की बनी हुई पगड़ियाँ···पगड़ियाँ खूब हैं। इतनी सुन्दरता और प्यारे ढंग से बारीक कपड़ा सिर पर तह किया गया है कि मशीन से बँधा दिखाई पड़ता है। वे दोनों किसी अनजानी भाषा में बातें कर रहे हैं। अभी दुर्भाग्य से उन्हें कोई ग्राहक नहीं मिला। उनके छोटे-छोटे बक्स पास रखे हैं। वे बैठे शायद अपने उस देश की बातें कर रहे हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के कान में इतना मैल होता था कि वह प्रतिदिन साफ़ करवाये तो भी समाप्त न हो और यह स्थान कैसा है कि कभी कोई जाट फँस भी जाता है तो चार आने से अधिक नहीं देता। दाँत की पीड़ा ठीक करने और दाँत का मंजन बेचने वाला सिख भी आकर बैठ गया है। उसके सामने एक बूढ़ी स्त्री खड़ी है और दाढ़ को हाथ लगाकर उसे कुछ समझा रही है।

सुबह अब थके-थके पगों और सुस्त साँसों से बढ़ रही है।

हरी, किशन को दुकान पर बैठा देखकर नहाने चला गया है। कुछ मिनटों में ही पानी को शरीर पर उंडेल कर वह लौट आयेगा और आकर फिर काम पर जुट जायेगा। किशन की दुकान पर लस्सी पीने वालों की भीड़ लगी है। दो चूल्हों पर पानी उबल रहा है। चाय

बन रही है और लस्सी बिलोई जा रही है। सुबह वाकई जवान हो रही है। किशन अपने ग्राहकों को अन्दर वाली बुढ़िया चन्द्रकौर की बातें सुना रहा है।

घंटाघर के मोटे तने पर 'मदर इंडिया' का पोस्टर लग चुका है। अनगिनत छोटे-छोटे पोस्टर उसके नीचे दब गये हैं। बड़ा आठ फुट बाई चार फुट का पोस्टर, 'मदर इंडिया' का विचित्र दृश्य प्रस्तुत कर रहा है। जगदीश प्रत्येक आने वाले परिचित व्यक्ति को हाथ का इशारा करके पोस्टर दिखाता है और मैले किचकिचे दाँत निकाल कर कहता है, "साली' नरगिस कितनी बूढ़ी दिखाई देती है।"

गुप्ता पनवाड़ी दुकान की गद्दी पर बैठा है। रामबिलास नीचे अँगीठी पर रखे कत्थे के पतीले में कोई और मसाला डाल रहा है। दूर से पार्वती धीरे-धीरे आ रही है। उसके स्कूल जाने का समय हो गया है। मार्ग भी यही है, इसलिए वह मार्ग में कम-से-कम पन्द्रह मिनट दुकान पर ठहरेगी। भारी शरीर और ढलकी हुई बड़ी-बड़ी छातियों वाली पार्वती में अब कोई आकर्षण नहीं। नाटे गुप्ता ने उसका आठ वर्षों का संचित रस चूस कर उसे यूँ बना दिया है जैसे रस निकाला हुआ गन्ना होता है—पार्वती को देखकर एक क्षण के लिए गुप्ता सिकुड़ गया है। उसकी भावनाएँ गडमड हो गई हैं। उसके मन में संघर्ष-सा हो रहा है। एक ओर नैतिकता, प्यार और दूसरी ओर कारोबार, पैसा और स्वार्थ की भावनाएं—पार्वती !

पार्वती दुकान पर आ गई है। उसने छतरी बगल में दबा ली है और गुप्ता से धीरे-धीरे बातें कर रही है। रामबिलास दूर हट गया है। जगदीश भी उठकर दूर हट गया है। गुप्ता उसी तरह गद्दी पर बैठा है। चुपचाप, पत्थर की मूर्ति जैसा, परन्तु उसके मन में संघर्ष सा हो रहा है।

कुछ पगों की दूरी पर खड़ा हुआ एक-दो डोगरी बड़ी रुचि से यह तमाशा देख रहा है। वह स्वयं को भी पार्वती की भांति गुप्ता

का शिकार समझता है। अभी पार्वती हट जायेगी तो वह आगे बढ़ेगा। ऊंचे-ऊंचे बोलकर अपने पैसे मांगेगा, झगड़ा करेगा। परमात्मा और नरक का भय दिखाएगा, कहेगा, "ओए, मुझे आज दस ही दे-दे। बाकी फिर सही, ओ जालमा!" गुप्ता उसी तरह गद्दी पर बैठा रहेगा; मुस्कराता रहेगा। चुप-चुप, पत्थर की मूर्ति-सा, परन्तु अब उसके मन में कोई संघर्ष नहीं होगा। वह उपेक्षा से मुस्कराता रहेगा। वह जानता है कि यदि वह जवाब में कुछ कहेगा तो चार आदमी सुनेंगे, झगड़ा बढ़ेगा और उसकी व्यर्थ बेइज्ज़ती होगी। इसलिए वह चुप है, परन्तु मुस्करा रहा है।

माई चन्द्रकौर बाहर निकली है। किशन हलवाई की बेंच पर बैठ गई है। एक प्याला चाय के लिए वह बैठी रहेगी, दूर से गुरमुखसिंह का हिन्दुस्तानी नौकर रामचन्द्र साइकल पर आ रहा है। वह आकर चाबी से दुकान खोलेगा और फिर जगदीश और वह दोनों अन्दर घुस जायेंगे, दुकान की सफ़ाई करेंगे।

दिन प्रारम्भ होता है, तो काम आरम्भ होता है। काम जिसके करने से खून-पसीना एक हो जाता है, परन्तु फिर भी पेट-भर रोटी उपलब्ध नहीं होती। काम करने के लिए ही तो पेन्टर बावरी भी शायर का एक गीत गुनगुनाता हुआ आ गया है। शायर के वायदे बहुत बड़े सही, परन्तु काम तो करना ही पड़ता है, अन्यथा बाल-बच्चों के लिए रोटी कहाँ से आये? डाक्टर ध्यानसिंह ने भी धीरे-धीरे चलते हुए आकर अपनी दुकान खोल दी है। किसी गाँव से गड्डे पर लिटा-कर लाये हुए दो रोगी और उनके सम्बन्धी जो उसके इन्तजार में बैठे थे, उठ खड़े हुए हैं। वे उसके साथ-साथ भीतर दुकान में घुस रहे हैं। पाँव के चिन्ह जो भीतर जाते दिखाई देते हैं, लौटकर आते दृष्टिगोचर नहीं होते—जागीरसिंह अलबत्ता अभी तक नहीं आया। वह किसी समीपस्थ देहाती स्कूल का दौरा समाप्त करके दस बजे के लगभग आयेगा—सरदार खोफ़नाकसिंह, जो एक-सौ एक बीघा ज़मीन

जोतता है। सौ बीघा उसकी अपनी पैतृक भूमि और एक बीघा ससुराल से मिली हुई, रक्त-मांस की जीवित भूमि—गुरमुखसिंह मज़ाक करने में कुशल है परन्तु वह स्वयं भी तो समाज पर एक बहुत बड़ा मज़ाक है।

हीरो पूरे ब्रश से एक नवयुवक सुसज्जित बाबू के बूट पालिश कर रहा है। हाँफते हुए वह साथ-साथ गीताबाली का एक किस्सा भी सुना रहा है। उसे इस पालिश के आठ आने वसूल करने हैं। यदि किस्सा नहीं सुनायेगा तो ये आठ आने कैसे वसूल होंगे और ये आठ आने वसूल न हों तो······

सेन गुप्ता भीतर नल पर नहा रहा है। घेरे वाला पंजाबी कच्छहरा पहनना उसने इन्हीं दिनों सीखा है। कोमल शरीर पर घेरे वाला कच्छहरा पहने वह बड़े मनोयोग से नहा रहा है। आज उसे सैल मीटिंग की कार्रवाई नोट करनी है और फिर पिछले दिनों जो पंजाबी बोलियाँ लिखी थीं उनका बंगला में अनुवाद करना है। सेन गुप्ता ······ उसकी सुधा······आज पत्र भी तो लिखना है। पहला और अन्तिम पत्र !!

रोज़ा होटल खुल गया है। इस समय बूढ़ा गठिया-ग्रस्त मालिक नहीं है। उसका बेटा है। इन्दू काऊंटर पर खड़ा बर्फ तोड़-तोड़ कर आईस क्रीम बनाने वाली मशीन में डाल रहा है। काम प्रारम्भ हो गया है। कुछ ग्राहक भीतर बैठे हैं। कुछ बाहर खड़े हैं। वे दो छोटे बैरे एक-एक प्याली चाय लेकर बाहर बैठे पी रहे हैं। यही चाय पीकर ढाई बजे तक काम करते रहेंगे। ढाई बजे उन्हें खाना मिलेगा। फिर एक या डेढ़ घंटा वे फ़र्श पर बोरी बिछाकर सो जायेंगे और फिर रात साढ़े बारह बजे तक······रोज़ा होटल !

अब तो सुबह थक-सी गई है। धूल उड़ने लगी है। भीड़-भाड़, शोरशराबा, ट्रैफ़िक, रिक्शों और छाबड़ी वालों की आवाजें, आवाजें, आवाजें, इस्पात के तेज धार वाले अस्त्र हैं जो वातावरण से गुज़रते हैं,

तो 'शां' की आवाज़ उत्पन्न होती है—रेत की मुट्ठी से एक-चौथाई रेत एक-एक कण करके गिर चुकी है। रेत के कण क्षण हैं। सुबह बीतने को है, ग्रीष्म की दोपहर दस बजे से ही प्रारम्भ हो जाती है। सुबह बूढ़ी हो गई है, अभी मर जायेगी तो उसकी मिट्टी से दोपहर जन्म लेगी।

वह समय, जो गिरगिट की तरह रंग बदलता है, तो सुबह से दोपहर हो जाती है। अब अपना रंग बदल रहा है। आँखों को शीतलता प्रदान करने वाला आसमानी नीला रंग अब सफेद और उज्ज्वल रंग में बदल गया है। दोपहर हो रही है, दोपहर !

दोपहर !

दोपहर !!

धूल, लू और गुब्बार, चुप्पी !!!

दोपहर

तपती दोपहर, लू, धूल, खामोशी……

घंटाघर की छाया उसकी सीढ़ियों पर है। टांगें इकट्ठी किए, बाहों का तकिया बनाए लोग सो रहे हैं। सीढ़ियाँ तंग हैं, इसलिए उन्हें बार-बार इकट्ठे होना पड़ता है। बूट-पालिश वाले लड़के अपने बक्सों को पास रखे सुस्ता रहे हैं। बातों की भिनभिनाहट है। थकी-थकी बातों की, जिनमें दिन के पहले आधे भाग की सफलताओं और असफलताओं की चर्चा है। बिक्री और परिश्रम के पैसों की गिनती है। यह गिनती पैसों से बढ़कर आनों तक पहुँचती है। कभी-कभी अठन्नी या रुपये को भी छू जाती है। परन्तु इससे आगे कभी नहीं बढ़ पाई। इन्हीं थकी-थकी बातों में दिन के दूसरे भाग की आशाप्रद कमाई का विचार है। विचार, जो दिन के दूसरे आधे भाग को पहले से श्रेष्ठ समझने पर विवश करता है, जिसके कारण पतले दुर्बल, अर्ध-बुभुक्षित लड़कों की आँखों में अब भी चमक है। दोपहर का यह घंटा जो उनके दिन के दो भागों को जोड़ने में पुल का काम देता है, धीरे-धीरे रेंग रहा है—समय की घिनौनी गली से रेंग रहा है। टूटी कमर वाली कुतिया की भांति!

कभी-कभी कोई आदमी ज़ोर से खांस कर थूकता है और हवा उसके कणों को ज़मीन पर पहुँचने से पूर्व ही उड़ा लाती है तो कुछ मोटी-सी गालियां वातावरण में बिखर-बिखर जाती हैं, जिनके उत्तर में बोलना कोई भी अपना कर्त्तव्य नहीं समझता। ये गालियाँ हानि-रहित हैं। इनकी हानि किसी को भी नहीं। कोई भी नहीं चाहता कि जवाबी गालियों की डोरी से उन्हें पकड़े रखे। इसलिए गालियाँ हवा

के उसी झोंके में विकीर्ण हो जाती हैं और फिर पलट कर नहीं आतीं।

सबसे ऊपर वाली सीढ़ी के एक छायामय कोने में 'एक-दो डोगरी' सो रहा है। उसकी छड़ी उसके वक्ष पर रखी है। उसकी दाढ़ी के बाल परेशान हैं। आँखें बन्द हैं। टांगे इकट्ठी किए वह अपने भूत या भविष्य के स्वप्न ले रहा है। वर्तमान में उसे कोई रुचि नहीं—वह एक ऐसा भिखारी है, जिसके विषय में सिवाय गुप्ता पनवाड़ी के और कोई कुछ नहीं जानता। उसके नाम से कोई परिचित नहीं। लोग केवल इस सीमा तक जानते हैं कि हर कुछ मिनटों के बाद विचारों में डूबा हुआ वह बड़बड़ाता है, "एक, दो डोगरी!" इसी साम्य के कारण उसका नाम रख दिया गया है—एक-दो डोगरी का इतिहास चाहे कुछ भी हो, वह एक दिलचस्प पात्र है। भिक्षावृत्ति की कला में कुशल होने के कारण वह पालिश वाले लड़कों से अधिक धनी है। उसकी औसत दैनिक 'आय' तीन से पांच रुपये है। व्यय केवल कुछ आने! शेष पैसों का वह क्या करता है, इस रहस्य को भी गुप्ता पनवाड़ी के सिवाय और कोई नहीं जानता, जिसके पास उसके कई सौ रुपये जमा हैं। केवल जमा हैं। गुप्ता उन्हें कभी लौटाएगा नहीं! यह बात एक-दो डोगरी भी जानता है, परन्तु कौन जाने—शायद लौटा ही दे। अपने निखट्टू बेटे के हाथों लुटने से तो अच्छा है कि गुप्ता ही रुपये डकार जाए—यह एक और खुला हुआ भेद है कि उसका बेटा भिखारी नहीं है। किसी दूसरे नगर में कुछ काम-धंधा करता है। मास में एक बार वह मैली चादर लपेटे, देहाती जूती पहने यहाँ आता है। एक-दो डोगरी से बातें करता देखा जाता है। कभी इन बातों में रहस्यपूर्ण स्वर की धुंध होती है, कभी तीव्र और क्रोधित स्वर की गर्मी। अलबत्ता हर बार जाते हुए उसे कुछ रुपये अपनी मैली चादर में लपेटते हुए देखा जाता है। बीस, पच्चीस, पचास तक। यह उसके बाप की कमाई है जिस पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। तथास्तु! ईश्वर सबको कमाने वाला पिता दे!

निचली सीढ़ियों पर कई छोकरे हैं। इनमें सबसे छोटे की आयु छः वर्ष और सबसे बड़े की चौदह वर्ष है। दिन को पालिश, रात को मालिश और शाम को सिनेमा इनकी दिनचर्या है। कृष्ण सबसे छोटा है। उसकी एक टांग नहीं है। उसे स्वयं भी याद नहीं कि यह टाँग कैसे कट गई थी। उसके साथी अलबत्ता उसे बताते हैं कि वह देवकी कोयले चुनने वाली का बच्चा है, कि उसकी माँ एक शंटिंग इंजन के सामने आकर कट गई थी। उसकी टांग भी उसी दुर्घटना की भेंट हो गई थी। रेलवे-हस्पताल वालों ने देवकी के बेटे कृष्ण को तो बचा लिया, परन्तु देवकी को न बचा सके। जब उसका जख्म भर गया, तो उसे वहाँ से अनाथालय भेज दिया गया, परन्तु वह बहुत देर तक वहाँ भी न टिक सका······। नगर में भिक्षा लेने वह जा नहीं सकता था। यदि कभी जाता भी, तो उसकी भिक्षा सदा कम रहती। परिणाम-स्वरूप वह मैनेजर के हाथों सदा पिटता, गालियाँ खाता। उसे भूखा रखा जाता। आखिर एक दिन हिन्दू अनाथाश्रम के चालीस रुपये मासिक वेतन पाने वाले मैनेजर पंडित जी के हाथों पिटने के बाद, उसने उनके मुखारविंद से निकला हुआ यह वाक्य सुना, "साले, तू भाग क्यों नहीं जाता ? इतनी मार पड़ती है, फिर भी ढीठ है ढीठ !" तो मृत देवकी का अर्धमृत बच्चा कृष्ण हिन्दू अनाथाश्रम से भाग आया और अब वह घंटाघर के ऊपर से दूसरी सीढ़ी पर एक टांग सिकुड़ाये सो रहा है। गर्मी है, लू है, धूल है। इसलिए वह सो रहा है। रात को सोने के लिए स्थान नहीं मिलता। कभी कोई संतरी ठोकर मार कर उठा देता है, इसलिए वह सो रहा है। अभी शाम होगी। वह अपनी लाठी के सहारे एक टांग पर फुदकता हुआ खड़ा होगा, सिनेमा के साइकल स्टंड के समीप बेकार सुसज्जित नवयुवकों की साइकलें साफ़ करेगा ? एक आना, दो आने, जो भी मिलेंगे, ले लेगा।

देवकी का बेटा कृष्ण, इतने सारे कंसों में घिर जो गया है।

उसका मित्र दस वर्षीय राजू भी सो रहा है। उसके भोले चेहरे

पर कुछ कष्ट और पीड़ा के चिन्ह हैं। उसे कई दिनों से बारी का ज्वर आता है। सरकारी हस्पताल वाला डाक्टर कहता है, "साले भाग जाओ, साँब देखेगा तो गालियाँ देगा।" राजू कुछ नहीं जानता, अलबत्ता कृष्ण जानता है कि ये शब्द डाक्टर ने नहीं कहे, कम्पौंडर ने कहे हैं। वह हस्पताल में प्रविष्ट रहने के कारण कम्पौंडर और डाक्टर के अंतर को समझता है—डाक्टर तो बड़े सज्जन होते हैं; चाहे वे रेलवे हस्पताल के हों या सिविल हस्पताल के! रेलवे हस्पताल के डाक्टर का छोटा बेटा सदा डाक्टर साहब के अपने घर से उसके लिए दूध लाया करता था। हाँ, अलबत्ता, कम्पौंडर बड़े खराब होते हैं, वेतन जो कम मिलता है। तभी तो वे प्रत्येक नुस्खे वाले से आठ-दस आने ऊपर से झाड़ लेते है— राजू ये बातें नहीं जानता। वह तो यह जानता है कि पालिश का रेट एक आने से दो आने तक है। बिल्ली मार्का बूट पालिश की डिबिया से पालिश लगाओ तो एक आना! तोता मार्का या चैरी मार्का डिबिया से लगाओ तो दो आने। वह यह भी जानता है कि संतरियों और थानेदारों के बूटों पर मुफ्त पालिश करनी पड़ती है और वह भी चैरी मार्का डिबिया से—कई दिनों से उसे बारी का बुखार आता है। उसका रक्त सूख गया है। एक-दो डोगरी कहता है कि वह पूर्णमाशी के दिन उस पर दम करेगा और वह बिलकुल ठीक हो जाएगा परन्तु पूर्णमाशी अभी पाँच दिन दूर है और अब तो राजू उठ भी बड़ी कठिनाई से सकता है। उसके लिए चाय, दूध और रोटी दूसरे लड़के लाते हैं। उन्होंने कभी अपने पैसों की पर्वा नहीं की। पहले उसे खिलाते हैं, फिर स्वयं खाते हैं।

सबसे बड़ा लड़का देसू, शुक्र और ऐत के दिन सिनेमा के बोर्ड उठाता है। दिन को पालिश करता है और रात को चम्पी। बड़े पैसे कमाता है। केवन ए सिग्रेट पीता है। उसके पास रहने के लिए कोठरी भी है, जहाँ वह अपनी बूढ़ी मां के साथ रहता है। बड़ा झगड़ालू है। एक बार उसने एक पतले से बाबू को पटक मारा था, चाहे बाद में

उसकी अपनी गत भी बन ही गई थी। कई दिनों से राजू का सारा खर्च वह स्वयं सह रहा है और आज साँझ को उसे अपनी कोठरी में भी ले जाएगा······

लू, धूल, चुप्पी······

सीढ़ियों के बिलकुल पास टाट की बोरी का सायबान बनाए बूढ़ा सिख सो गया है। उसके हाथों से सुखमणि साहब और जपुजी साहब का सम्मिलित गुटका फिसलकर मूँगफली की टोकरी में जा गिरा है। लू उसकी सफेद दाढ़ी को परेशान कर रही है। रेवड़ियों और नुगदी की टोकरियाँ पतले मलमल के कपड़े से ढकी हुई हैं। कभी कोई भूली-भटकी, गर्मी की सताई हुई मक्खी वहां से उड़ कर उसकी दाढ़ी के पास आ बैठती है तो वह चौंक उठता है। कुछ क्षण वीरान सड़क, उड़ती हुई धूल और इक्के-दुक्के रिक्शों को अर्थहीन दृष्टि से देखता है। गिरा हुआ गुटका उठाकर बड़ी श्रद्धा से सिर-आँखों से लगाता है और फिर ऊँघ जाता है। आज सुबह से वह बहत्तर बार जपुजी साहब का और बारह बार सुखमणि साहब का पाठ कर चुका है। दायीं कलाई से लिपटे सूत के धागे की गांठें इस बात की साक्षी हैं—बूढ़ा सिख, भाई थानसिंह जब पंजा साहिब में था तो गुरुद्वारा से बाहिर उसकी बहुत बड़ी दुकान थी। मन-मन रेवड़ियाँ और पाँच-पाँच मन नुगदी मेले के दिनों में लगती थी। दुकान की कमाई से उसने नया पक्का मकान भी बनवा लिया था, परन्तु जब वह बूढ़ी बीमार स्त्री और दो लड़कियों के साथ यहाँ आ गया, तो भी उसकी भुजाओं में शक्ति थी। उसे एक दुकान अलाट भी हुई परन्तु कब्जा न मिलने के कारण और लड़ाई-झगड़े से डर कर उसने इस स्थान पर 'फूड़ी' लगा ली। कई बार म्यूनिसपैलिटी वालों ने और कई बार ट्रेफ़िक पुलिस वालों ने भी उसे यहाँ से उठाने का प्रयत्न किया परन्तु भाई थानसिंह का धार्मिक हृदय संसार की कठोरता को देखकर कठोर हो चुका था, इसलिए वह बिलकुल न उठा। और फिर जब इस स्थान पर उसका स्थायी

अधिकार हो गया तो म्यूनिसपेलिटी वाले भी मान गये। अब वे दस आने दैनिक, इस स्थान का किराया, लेते हैं और बस······

भाई थानसिंह की बिक्री अधिक नहीं है। एक आना लेकर ग्राहक उसके पास कम ही आते हैं। उसके जीविका-प्रदाता येही पालिश और मालिश वाले लड़के हैं—पैसों की गिनती में उसकी दैनिक आय उतनी नहीं, जितनी बार वह जपु जी साहिब का पाठ करता है। "गुरु कभी तो कृपा करेगा!" वह अपने आपसे कहता है। बन्तो और जीतो दोनों अब जवान हैं। बन्तो की आयु तो उन्नीस वर्ष हो गई है। कोई भले घर का लड़का मिले तो वह इन दोनों के हाथ पीले कर दे, परन्तु भले घरों के लड़के कहाँ मिलते हैं? दहेज कहाँ से आये? बारात की सेवा के लिए रुपया कहां से आये? क्लेम है, यदि मिल जाये तो कुछ काम बने। पिछले दिनों गली के एक गरीब परन्तु शरीफ घराने की लड़की घर से भाग गई। यदि बन्तो भी भाग गई तो··· ? वह कुछ नहीं सोचता! तेजी से शब्द-हज़ारे का पाठ आरम्भ कर देता है। "गुरु कभी तो कृपा करेगा!"

भाई थानसिंह की बूढ़ी आँखों में अब भी आशा की चमक है। उसकी धमनियों में रक्त जमा नहीं। काश, उसका कोई बेटा होता! एक बेटा होता······

अभी धूप की गर्मी कम होगी तो वह उठकर पहले अपने कपड़े झाड़ेगा। छड़ी के साथ बँधे कपड़े से टोकरियों की धूल दूर करेगा। 'वाह गुरु, वाह गुरु' करते हुए कुछ लम्बी साँसें लेगा। माप-तोल और तराजू जोड़कर रखेगा और फिर पाठ में लीन हो जाएगा!

उसके समीप घंटाघर के बायें किनारे, कचहरी रोड पर पैन और टार्च मरम्मत की दुकानें बिलकुल चुप हैं। सरहद्दी पैन-विक्रेता केबिन फ़ैन लगाए सो गया है। उसके पाँव के धक्के से स्याही की दवात फ़र्श पर गिर कर टूट गई है। उसके खुले मुख से राल की एक लम्बी-सी लकीर बहकर उसकी दाढ़ी के बालों में उलझ रही है। पेन, जो वह

मरम्मत कर रहा था, उसकी गोद में पड़ा है······वह सोया हुआ है एक क्षणिक, झपकी-जैसी निद्रा जो, निद्रा नहीं है, झपकी भी नहीं है, केवल गर्मी और थकान और बोरियत और चिन्ता तथा निर्धनता के अनुचित सम्बन्ध की उत्पत्ति है—सरहद्दी पेन-विक्रेता जब प्रथम बार यहाँ आया, तो घंटाघर के किनारे का यह भाग बिलकुल वीरान था। यहाँ भांग के पौधों के बड़े-बड़े झुण्ड थे, एक तन्दूर था और उसके साथ केवल एक लैटर-बक्स, घंटाघर के इस भाग की समस्त सृष्टि यही थी। वह परिश्रमी था, कार्य-कुशल था। पैन, टार्च, घड़ियाँ सब कुछ ही मरम्मत कर लेता था। उसने वाह् गुरु का नाम लेकर कार्य आरम्भ किया। धीरे-धीरे पेन-मरम्मत के साथ उसकी अपनी दशा भी सुधरने लगी। अकेले व्यक्ति से पूरा काम निभाना कठिन हो गया तो उसने एक लड़का नौकर रख लिया। अभी छः मास भी नहीं व्यतीत हुए थे कि दायें-बायें—एक, दो, तीन, चार दुकानें बन गयीं। घड़ी, पेन, टार्च की चार दुकानें—काम फिर भी चलता रहा। थोड़ा-बहुत गुजारा होता रहा। "और गुजारा तो वाह गुरु पर अवलम्बित है···" सरहद्दी कहा करता है, "गुज़ारा तो चलता ही रहेगा, चाहे एक छोड़, बीस दुकानें ही और क्यों न बन जाएँ! वह तो पत्थर में भी कीड़े को आहार प्रदान करता है, और हम तो मानव हैं···"

मानव तो वे मोची भी हैं जिनके सायबान पैन-मरम्मत की दुकानों के बिलकुल साथ हैं। बोरी के टाट बिजली के खम्भों के साथ बाँधकर छायामय स्थान बना लिया गया है। एक ओर लाल लैटर-बक्स है, दूसरी ओर सड़क। फुटपाथ पर बोरी के सायबान हैं और उनके नीचे तीन मोचियों की दुकानें हैं—मोची, जो नगर की धूल, लू और गन्दगी की उपज हैं, जिन्हें प्रतिदिन मधुबाला और सुरैया की नग्न तसवीरें देखने के लिए सिनेमा जाना पड़ता है, जो गन्दी गुप्त बीमारियों से ग्रस्त हैं, जिन्हें गाँव से एक दिन के लिए नगर आये हुए जाटों की पावन आकृतियाँ एक आँख नहीं भातीं। जो नगर में नवागन्तुक जाटों को बुला-

बुलाकर उनकी जूतियों के नीचे बिना पूछे एक-एक दर्जन स्टार लगा देते हैं और पैसों के अवसर पर जब झगड़ा होता है तो अपनी सुम्बी और हथौड़ी उठाकर भोले जाटों को धमकाते हैं, गालियाँ बकते हैं, पगड़ी तक उतार लेते हैं। जब तक वह जाट अनाज बेचे हुए पैसों में से रुपया-डेढ़ रुपया इनकी भेंट न चढ़ा दें, वे उन्हें नहीं छोड़ते—मोची, जिन्हें सिवाय बूटों के नीचे स्टार लगाने के और कुछ नहीं आता। जो अपने औजारों से एक इंच चमड़ा सी नहीं सकते। जो जाटों की पवित्रता और कार्य-कुशलता के समुद्र में अपनी गालियों, धमकियों, अपनी मेखों और अपने स्टारों की गंदगी कीकुछ बूंदें प्रविष्ट करके यह समझते हैं कि उन्होंने इस समुद्र को जीत लिया, इसकी थाह पा ली······

इन्हीं मोचियों के बिलकुल पास लैटर-बक्स है। पुराना, रहस्यमय, लाल लैटर-बक्स, जिसके अन्तर में हजारों रहस्य बन्द हैं। प्यार, स्नेह, घृणा, मुकद्मेबाजी, बीमारी, षड्यन्त्र, रुपये की प्राप्ति और व्यय के लिए अपराधों के स्वीकृति-पत्र। मैत्री, शत्रुता, रिश्तेदारी—बड़ों की सांसारिकता और बच्चों के भोलेपन से भरपूर पत्र। जिसने कभी किसी का रहस्य नहीं खोला, जो प्रत्येक पत्र को स्वीकार करने के लिए भुजायें फैलाये हैं।

लैटर-बक्स यदि एक पैन-विक्रेता होता और वह भी उन तीन-तीन पैन-विक्रेताओं जैसा, जो उसके पड़ौसी हैं तो यहाँ खुरपियों और सुम्बों से प्रतिदिन युद्ध होता। मासूम प्यारों की कहानियाँ बनतीं, षड्यन्त्रों के ढेर खुले आम पड़े रहते। मधबाला और नर्गिस को डाक में डाली गई चिट्ठियाँ नोटिस-बोर्ड पर लगा दी जातीं—परन्तु लैटर-बक्स न पैन-विक्रेता है, न मोची, न भाई थानसिंह, न एक दो डोगरी—वह तो एक लैटर-बक्स है और बस। लैटर-बक्स मानव नहीं है। मोची अलबत्ता मानव हैं और वे अन्य पैन, टार्च और घड़ियाँ मरम्मत करने वाले भी।

× × ×

कहते हैं, एक बार एक छोटा-सा बच्चा किसी लैटर-बक्स में एक पत्र डालने के लिए लाया। लैटर-बक्स ऊँचा था। उसने अनेक बार प्रयत्न किया कि उचक कर पत्र डाल दे परन्तु असफल रहा। पास से एक धनी व्यक्ति की बग्घी गुजरी। उसने लड़के को देखा तो बग्घी रुकवा ली। उतर कर बच्चे के हाथों से पत्र लिया। पता पढ़ा, लिखा था, 'पिताजी द्वारा श्री भगवान, स्थान आकाश, डाकखाना खास। धनी व्यक्ति समझ गया। उसने बच्चे से उसका नाम पूछा, पता पूछा। घर जाकर उसकी विधवा मा की सहायता की, बच्चे की शिक्षा का प्रबन्ध किया।

कहानी यहाँ समाप्त हो जाती थी, यह सभी जानते हैं, पर वास्तविक कथा तो यहाँ से प्रारम्भ होती है। धनी व्यक्ति नगर का सबसे बड़ा कारखानेदार था। उसकी आयु चालीस वर्ष के लगभग थी। जब वह बच्चे के घर पहुँचा, तो उसकी मां मशीन पर पड़ोसियों के कपड़े सी रही थी। माँ ने एक अपरिचित व्यक्ति को अपने सामने देखकर सिर पर कपड़ा कर लिया और बैठने के लिए मूढ़ा पेश किया। कमरे में केवल एक चारपाई थी। इस चारपाई के पायों के नीचे चार-चार ईंटें रखकर नीचे अन्य विविध प्रकार के सामान और दो टूटे-फूटे बक्स रखने के लिए स्थान बना दिया गया था। एक ओर कुछ बर्तन रखे थे। धनी व्यक्ति की बग्घी अभी तक सड़क पर खड़ी थी। उसने अत्यन्त कोमलता और स्नेह से पूछा, "आपका पुत्र भगवान् के नाम यह पत्र लैटर-बक्स में डाल रहा था। इसी से सारी अवस्था का ज्ञान हो जाता है। क्या आप मुझे बताएँगी कि इस बच्चे ने बाप के नाम इस पत्र में क्या लिखा है?" माँ सिसकने लगी। वह कुछ न बोल सकी। परन्तु बच्चे ने स्पष्ट भोले शब्दों में कहा, "मेरे पास स्कूल की फीस नहीं है। सब बच्चों के पिता उन्हें मनीऑर्डर भेजते हैं। क्या मेरे पिता जी मुझे कुछ रुपये नहीं भेज सकते?"

धनी व्यक्ति ने रोती हुई स्त्री को सांत्वना दी। उसके सलौने, किन्तु

मुरझाये हुए चेहरे में कुछ खो जाने की चेष्टा की। फिर जेब से कुछ रुपये निकाल कर मूढ़े पर रख दिये। अपना पता देकर वह चला गया।

दूसरी सुबह वह फिर आया। उसके हाथों में कुछ कपड़े थे। माँ के लिए सादी सफेद साड़ियाँ थीं। बेटे के लिए कमीजें और नीकरें तथा बूट और किताबें और मिठाई—माँ सिर पर कपड़ा ओढ़े, घुटनों में सिर दिए आँसू बहाती रही। बेटा घर नहीं था। फीस लेकर स्कूल गया था। धनी व्यक्ति ने कहा, "मुझे तुमसे सहानुभूति है। तुम्हारे लड़के को मैं अपना ही बेटा समझता हूँ। तुम कभी-कभी इसे लेकर हमारी कोठी पर आया करो। और किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो कहो।"

माँ ने सिर हिला दिया। वह चला गया। बेटा स्कूल से लौटा। वह बेहद खुश था। उसने कमीजें देखीं, नीकरें देखीं। अपने फटे हुए कपड़े उतार फेंके। बूट देखे। पुराने स्लीपर बाहर कूड़े पर फेंक आया। किताबें देखीं तो छाती से लगा लीं। मिठाई देखी, एक टुकड़ा मुँह में डाला। फिर माँ को रोते देखकर उसके समीप आया। उसके गले में अपनी बाहें डाल दीं, भूल गया। मिठाई का टुकड़ा लेकर उसके मुंह में डालने का प्रयत्न किया। "रोती क्यों हो माँ? आज तो हँसो। आज मास्टर ने मुझे दण्ड नहीं दिया। केवल किताबें लाने की ताकीद की है। मां, बग्घी वाले बाबूजी बहुत अच्छे हैं न?"

मां ने सिर हिला दिया। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। एक जवान विधवा स्त्री के लिए किसी अपरिचित से सहायता स्वीकार करना कितना भयंकर सिद्ध हो सकता है, यह वह जानती थी। परन्तु यह व्यक्ति तो देवता दिखाई पड़ता था। इसने तो ऐसी-वैसी कोई बात न की थी। फिर यह उसके बच्चे को प्यार भी करता था। उसकी अपनी कोई संतान भी नहीं थी। कौन जाने···कौन जाने··· उसने सिर झटक दिया। ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिएँ। क्या वह

अपने लाल को स्वयं से छीने जाने के लिए तैयार हो जाएगी ? चाहे वह इतने बड़े व्यक्ति का पुत्र ही क्यों न बन जाए।

कई दिनों के बाद वह व्यक्ति सांझ को आया। बच्चा घर में था। वह उसे अपने साथ में ले गया। बाजार की सैर करवाई। जब बच्चा लौटा तो उसके चेहरे पर भोलेपन तथा अतीव हर्ष का मिश्रण हो रहा था। उसने वास्तविक आंखों में पिता के लाड और प्यार देखे थे। उसके हाथों में उसी तरह के कपड़े और मिठाइयाँ थीं। कहानियों की सचित्र पुस्तकें थीं। उसके पीछे-पीछे उसने भी प्रवेश किया। उसी प्रकार मूढ़े पर बैठ गया, पसीना झटका, फिर पानी माँगा। बच्चे की मां को लगा, जैसे धीरे-धीरे इस घर पर किसी का अधिकार बढ़ता जा रहा है। बच्चा भाग कर बर्फ़ ले आया। उसने शिकंजवी बनाई। पहले उसे दी, फिर बच्चे को दी। फिर धीरे से दरी पर बैठ गई। पाँव के अँगूठे से भूमि कुरेदने लगी। सिर पर कपड़ा ले लिया।

उसने कहा, "मैं कई दिनों से सोच रहा था, यह कमरा तुम्हारे और तुम्हारे बेटे के योग्य नहीं है। तुम्हारे लिए नगर के बाहर सिविल लाइन में एक घर का प्रबन्ध हो सकता है। एक अलग सुन्दर घर, जिसमें एक वाटिका भी है, जहाँ बच्चा खेला करेगा। तुम सुख से रहोगी। पड़ोसियों के कपड़ों की सिलाई नहीं करनी पड़ेगी। कोई चिन्ता न होगी। मकान के किराये का, घर के खर्च का, बच्चे की फीस और किताबों का······और फिर कभी-कभी मैं भी आ जाया करूँगा यहाँ तो······गाड़ी ठहराते ही लोगों की दृष्टि······

वह काँप उठी ! तो यह बात थी ! इसी के लिए सारा आडम्बर रचाया जा रहा था। उसकी आँखों से मूक अश्रुओं की लड़ियाँ बह-बह कर टूटने लगीं। किसी जवान विधवा स्त्री के लिए किसी अपरचित से सहायता स्वीकार करना कितना भयंकर सिद्ध हो सकता है, इसका ज्ञान उसे अब हुआ। पहले केवल एक सन्देह के पंखों की

छाया थी। अस्पष्ट-सी, अर्थहीन-सी, परन्तु अब वास्तविकता अपनी पूरी काली सत्ता सहित उसके अंगों में आ उतरी थी। उसने बच्चे को अपने शरीर से लगा लिया। रोते-रोते बोली, "आपको ऐसा नहीं कहना चाहिये था। हम गरीब हैं, परन्तु इज्जत नहीं बेचते। आज इसके पिताजी जीवित होते तो·····अब आप चले जाएँ—एक दम चले जाएँ, अपनी चीजें लेते जाएं !" उसने बक्स खोलकर कपड़े उसकी गोद में फेंक दिए, "इसी क्षण चले जाइये और भगवान् के लिए कभी लौट कर न आइए !"

तो कहानी वहां समाप्त नहीं होती थी, जहाँ तक हमने सुनी थी। वास्तविक कहानी तो यहां समाप्त होती है। बच्चा अब चाहे कितनी कठिनाई से उचक कर ही भगवान् के नाम अपना पत्र लैटर-बक्स में क्यों न डाले, वह किसी की सहायता स्वीकार न करेगा। किसी की भी नहीं, चाहे वे पालिश और मालिश वाले लड़के हों, या एक दो डोगरी, या भाई थानसिंह या बाग्धी वाले सेठ जी ! क्योंकि ये सब तो मानव हैं और लैटर-बक्स मानव नहीं है। वह केवल लैटर-बक्स है और बस ! उसे ब्लेक मेलिंग करनी नहीं आती !!

जी० टी० रोड के दक्षिणी भाग से बाजार की ओर मुड़ने के लिए सड़क को पार करना पड़ता है। इस समय गोल चक्कर के चबूतरे पर ट्रैफ़िक कान्स्टेबल नहीं है। कठोर धूप है, गर्मी है, लू है, धूल है और खामोशी है। कभी-कभी ओवरलोड ट्रक मकड़ी की धीमी गति से दक्षिण से आता है और गियर बदलते हुए चौक से गुजर जाता है। कुछ देर तक उसकी गर्द और उसके पेट्रोल की गन्ध हवा में उठते हुए विलीन हो जाती है। लगता है, जैसे ट्रकों के ड्राइवर अपनी सीट पर सोये हुए हों, ट्रक भी सोया हुआ हो। उसकी गति तो उसकी जागृति का प्रमाण नहीं। यह तो उसके अस्तित्व का प्रमाण है। सिद्ध हुआ कि सोये-सोये से ट्रक, अर्ध-स्वप्निल ड्राइवरों को लादे अत्यन्त धीमी गति से धूल और लू में अपना मार्ग बनाते गुजर रहे हैं। उन्हें ट्रैफ़िक कान्स्टेबल की परवा

नहीं। ट्रेफ़िक कान्स्टेबल इस समय सड़कों पर दिखाई नहीं देते। यह बात ड्राइवर भी जानते हैं और ट्रक वाले भी जानते हैं (तभी तो वे सोये सोये चलते हैं)

ट्रेफ़िक कान्स्टेबल ड्यूटी पर होते हुए भी यहाँ नहीं है। उसकी पत्नी के विगत रात्रि को पाँचवाँ बच्चा हुआ है। हस्पताल में है। चार बच्चे घर हैं, जिन्हें बूढ़ी अंधी मां सँभालने का प्रयत्न करती है। बच्चे नंग-धड़ंग हैं। उनके शरीर पर वस्त्र नहीं और हस्पताल की लेडी डाक्टर कहती है, "अच्छे पुलिस वाले हो! पत्नी का दूध तक नहीं पिला सके? नौ मास बीत गए। उसके रक्त में लाल कण दिखाई तक नहीं देते! बच्चा दुर्बल न हो तो क्या हो? अब भी दवाएं न ला सके! क्या उस बेचारी की जिन्दगी जिन्दगी नहीं है? स्वयं तो शराब पियो और गुलछर्रे उड़ाओ और रिश्वतें लो!"

ज्ञानीराम उत्तर में यह नहीं कह सकता कि मेम साहिब! रिश्वतें कहाँ मिलती हैं? अंग्रेज का जमाना नहीं है। अब तो एक ट्रक वाले का चालान करो तो आधे घण्टे के बाद किसी एम० एल० ए०, किसी मन्त्री, किसी अफ़सर का टेलीफोन आ जाता है। अपनी पेटी को टटोल कर देखना पड़ता है कि सुरक्षित है या नहीं। मुअत्तल तो नहीं हो गये? सभी ट्रक किसी मन्त्री, किसी एम० एल० ए० या किसी बड़े राजनीतिक-पीड़ित की सम्पत्ति हैं। आप हाथ लगाकर देख लीजिए......

ज्ञानीराम ने जब विवाह किया तो युद्ध अभी जोरों पर था। रावलपिंडी में ट्रेफिक यूँ भी अधिक हुआ करता था। इसलिए जब वह ड्यूटी से लौटकर अपनी दुलहन के पास जाता था तो उसके हाथों में फलों के लिफ़ाफ़े होते, बादाम की गिरियों, खुरमानियों और दूसरे सूखे फलों से घर भरा रहता। तिल्ले, सलमे-सितारे वाले सूट उसकी दुलहन के बक्सों में न समाते। उसकी पत्नी अपने सौभाग्य पर फूली न समाती। दिन चुटकी बजाते बीत गये। विभाजन हुआ। रावलपिंडी से लुट-पिट कर यहाँ आ गये। अब पाँच बच्चे हैं। बूढ़ी अंधी मां है। रिश्वत बंद

है। चवन्नी-अठन्नी किसी गरीब रिक्शा वाले से लेने को जी नहीं चाहता। वही वर्ष के बाद दो रुपये कुल तरक्की है। ग्रेड यही है। काम अधिक है। पत्नी के रक्त में लाल कण आएं तो कहां से आएं? उसके लिये तो फल, दूध और विटामिन की शीशियां चाहियें।

इसलिये ज्ञानीराम अपनी ड्यूटी से अनुपस्थित है। वह घर से बूढ़ी मां की पुरानी, बहुत पुरानी बालियाँ लाया है और अब एक सर्राफ़ के यहाँ बैठा है। वहाँ वह ये आभूषण गिरवी रखेगा। हस्पताल से मिली परची के अनुसार दवाइयाँ खरीदेगा और फिर हस्पताल जायेगा। उसे कौशल्या से प्यार है। उसके लिए कौशल्या के जीवन का मूल्य अपने जीवन से अधिक है।

ट्रैफ़िक कान्स्टेबल ज्ञानीराम जाग रहा है। इसीलिए तो ट्रक सोए सोए चलते हैं!

गोल चक्कर के किनारे-किनारे पिछी पटरी सुनसान है। अखबारों और पत्रिकाओं वाला बूढ़ा अपना सामान सिमेट कर सामने होटल पर रख गया है। केवल कुछ कागज बिखरे पड़े हैं। कोई नन्हा बगूला उन्हें एक वृत्त में उड़ाता हुआ ऊपर ले जाता है तो कुछ क्षणों के लिए सड़क की चुप्पी टूट जाती है। येही कागज फिर धीरे-धीरे कटे हुए बेकामानी के पतंगों की भांति भूमि पर आ गिरते हैं। मदन अखबार विक्रेता का बूढ़ा बाप भी एक कटा हुआ पतंग है, परन्तु उसके साथ इतनी डोर नहीं है कि वह धरती पर शीघ्र लौट आये। वह ऊँची से नीची और नीची से कुछ और नीची हवाओं मे उड़ता ही चला जा रहा है। जब वह भूमि पर गिर जाएगा तो मदन को पन्द्रह-बीस रुपये मासिक पर कोई लड़का नौकर रखना पड़ेगा। जो बूढ़े के स्थान पर अखबारों और पत्रिकाओं के पास बैठेगा। इसी बीच में मदन लोगों के घर अखबार और पत्रिकाएं देने जाएगा। तो बूढ़े की मार्कीट वेल्यू केवल बीस रुपये मासिक है। केवल बीस रुपए, जिनके आधे दस रुपये होते हैं।

मदन ने जब यहां आकर प्रथम बार अखबारों का काम प्रारम्भ

किया तो वह एक कच्चा-सा नवयुवक था। वह राह चलते लोगों को अख़बार उधार दे देता। इस विश्वास पर कि कल गुज़रते हुए जब ग्राहक पैसे देने लगेगा तो नया अख़बार भी ख़रीद लेगा। वह अख़बारों और पत्रिकाओं के दफ्तरों में पेशगी रक़म भेजकर अपने आर्डर बुक करवा लेता। जब पत्रिकाएं बच जातीं तो उन्हें रद्दी में बेचने के सिवाय कोई और चारा न सूझता। परन्तु धीरे-धीरे वह अपने कार्य में कुशल होता गया। अब आप अख़बार लेते समय चवन्नी देकर देख लीजिए उसके पास शेष दवन्नी नहीं होगी। आप कहेंगे, "अच्छा फिर कभी सही!" दूसरे दिन आप अख़बार पढ़ भी चुके हों तो भी उससे नक़द दवन्नी नहीं लेंगे। कोई अन्य अख़बार ले लेंगे या कोई पत्रिका लेकर बाक़ी के पैसे उसे नक़द दे-देंगे! अब वह सिवाय एक-दो स्तरीय बिकने वाली पत्रिकाओं के, और कोई भी पत्रिका वी० पी० से नहीं मँगवाता। पेशगी रक़म भेजना तो एक ओर रहा, अब पत्रिकाएं उसे खुली डाक से आती हैं। न बिकने वाली पत्रिकाओं का मूल्य काट कर शेष मूल्य वह मनी-आर्डर कर देता है। बची हुई पत्रिकाएं वह वापस भेज देता है। इस चौक में अख़बार और पत्रिकाएं बेचना उसकी मोनोपली है। इसलिए छोटी-मोटी पत्रिकाओं वाले भी उससे घबराते हैं''''''

परन्तु अब यह एकाधिकार टूट रहा है। उसके बिलकुल साथ ही अकाली जी ने अपने अख़बार और पत्रिकाएं सजानी प्रारम्भ कर दी हैं। अकाली, अकाली दल का प्रमुख कार्यकर्त्ता है। बहुत से सिख अब उसी से अख़बार और पत्रिकाएं ख़रीदने लग गए हैं। उसके पास पंजाबी की प्रत्येक पत्रिका मिलती है। वह मिलनसार भी है। इसलिए मदन की मोनोपली अब समाप्त हो रही है। वह बीस रुपये मासिक पर लड़का नौकर रखे या न''''''उसका बूढ़ा बाप धरती पर गिरे या न''''''बूढ़ा बाप, जिसकी मार्कीट वेल्यू केवल बीस रुपये मासिक है!

× × ×

जी० टी० रोड के दक्षिण भाग से सड़क को र करने के लिए

पटरी को छोड़ बायीं ओर मुड़ना पड़ता है।

सामने दायें-बायें दो हलवाइयों की दुकानें हैं और उनके बीच में छः फुट × चार फुट × बारह फुट स्थान बनाकर रेलवे की सिटी बुकिंग ऐजंसी का कार्यालय बना लिया गया है। कबूतर के डरबे-जैसा यह स्थान किसी प्रकार भी एक जेल से कम नहीं है। केवल छत ही जमीन से बारह फुट ऊँची है। दायें-बायें टिकटों के खाने हैं और इन खानों में टिकटों के गड्डे-के-गड्डे यूँ लदे हैं जैसे कबूतरों के सहमे हुए बच्चे अपने-अपने डरबों में सिर झुकाये बैठे काँप रहे हों। छः फुट लम्बी और चार फुट चौड़ी जगह में ये रैक ही समा सकते हैं, बुकिंग क्लर्क नहीं, परन्तु बुकिंग क्लर्क ······

इस समय भी बाबू गौरीशंकर, नाक के फुंदे पर ऐनक लगाये कैश गिन रहा है। यह आठवीं बार है कि वह सारा-का-सारा कैश आने पाइयों तक गिन रहा है। अभी कोई देहाती मुसाफ़िर आयेगा और जब वह सामने हाल की टिकट लेने के लिए दो का नोट देगा तो उसे बकाया की रेजगारी देनी पड़ जायेगी। बकाया की रेजगारी देने का अर्थ यह है कि बाबू गौरीशंकर उसके जाने के बाद एक बार फिर सारा कैश गिनेंगे। बात ही ऐसी है!

गौरीशंकर को बहुत पहले रिटायर हो जाना चाहिये था, परन्तु अभी पिछले दिनों ही उसने पचास रुपये रिश्वत देकर डाक्टर से अच्छे स्वास्थ्य, और पांच वर्ष और काम करने की योग्यता का सर्टिफ़िकेट लेकर भेजा है। यह और बात है कि बाबू गौरीशंकर को गत दस वर्षों से बवासीर है और बैठे-बैठे ही उसके कपड़े रक्त से भर जाते हैं। आंखों से ऐनक अब उतर चली है और नई ऐनक बनवाने का सामर्थ्य एक ऐसे व्यक्ति में कहाँ है, जिसके आठ बच्चे हों और सबसे बड़े की आयु बीस वर्ष हो और जो मेट्रिक में दो बार फेल हो चुका हो और तीसरी बार भी पास होने की कोई आशा न हो। इसीलिए तो पच्चास रुपया रिश्वत देकर उसने सर्टिफ़िकेट प्राप्त किया है। यदि वह अभी रिटायर हो जाए तो उसे प्रावीडेंट फंड तो मिल जाएगा, परन्तु तनख़ाह······तनख़ाह

बंद हो जाएगी तो उसके बच्चे खाएंगे कहाँ से ? और इस नौकरी के अतिरिक्त वह और कर भी क्या सकता है ?

सर्टिफ़िकेट से भी उसके विभाग वाले तो शायद धोखा खा जायें, परन्तु वह जानता है कि अपने-आपको धोखा देना कितना कठिन है। दिखाई उसे नहीं देता, टिकट देते और रक़म लेते समय हाथ उसके काँपते हैं। वह बैठे-बैठे ही ऊँघ जाता है। कई शिकायतें हो चुकी हैं। कैश कम होने का डर उसे हर समय दबाए रहता है—एक बार पचास रुपये गाँठ से देने पड़ गए थे तो उसके लिए भगवान् ही मर गया था। उसके बाद से वह यथासम्भव अपने पास से बक़ाया के नोट और रेज़गारी नहीं देता। यात्री से कह देता है, नोट तुड़वा कर लाओ ! या फिर किसी शिथित सुसज्जित व्यक्ति को बक़ाया देना भी पड़ जाए तो उसके जाते ही सारा कैश एक बार फिर गिनता है। बात ही ऐसी है !

गौरीशंकर गत कई वर्षों से इस बुकिंग ऐजन्सी पर ही है। स्टेशन पर वह कार्य करने के अयोग्य है (योग्यता सर्टिफ़िकेट हो भी तो ·······) यहाँ काम कम होता है। समय पर खोलना और समय पर बंद कर देना। केवल दस घंटे दैनिक कार्य, खाना घर से छोटा लड़का पहुँच जाता है। पानी की सुराही पास रखी है और पेशाब आए तो···

परन्तु उसका समाधान भी बाबू गौरीशंकर के पास है। पाँच वर्ष और कार्य करने की योग्यता रखने वाले बाबू गौरीशंकर ने टीन का एक छोटा डब्बा, फ़र्श पर, लकड़ी के रैकों के नीचे छिपा कर रखा हुआ है। हर समय तो यात्री होते नहीं और वह कुर्सी के नीचे फ़र्श पर आ जाए, तो बाहर से कुछ दिखाई ही नहीं देता। और यदि शाम के समय या किसी भी समय डिब्बे की वस्तु बाहर नाली में उँडेल दी जाए तो कौन जानता है कि·······

इसलिए बाबू गौरीशंकर अपने जीवन से असंतुष्ट नहीं है। जीना उन्हें अच्छा लगता है। इसलिए तो वह बीस-पचीस रुपये ऊपर से कमाने के दाँव भी सोचने लगे हैं।

उसके साथ हलवाई की दुकान पर नौकर अमरू को भी बीस रुपये

मासिक वेतन मिलता है। इस बीस रुपये में रोटी कपड़ा सम्मिलित नहीं है। केवल चाय की प्याली है, जो वह सुबह आठ बजे पीता है और दोपहर के एक बजे तक काम करता रहता है। फिर रोटी बनाता है और फिर जब सांझ आरम्भ हो जाती है तो मशीन की तरह काम पर लग जाता है—इस समय एक बजा है। दुकान के भीतर कोई ग्राहक नहीं है। दुकान के बाहर केवल एक बूढ़ा खाज-ग्रस्त कुत्ता है। बनिया मालिक, जिसे लोग बनिया न कहकर लाला कहते हैं, गद्दी पर औंधे मुँह पड़ा सो रहा है। नीची छत से चिपका हुआ केबिन फैन औंधे के से शोर के साथ चल रहा है। उसकी मिठाई की जाली बंद है। इसलिए मक्खियों की टोली गर्मी और केबिन-फेन की आँधी से डर कर भीतर दुकान के शीतल भाग में चली गई है, जहाँ कड़ाहियाँ हैं, बासी जलेबियाँ हैं, झूठी प्लेटें हैं, गदन्गी है, बू है और जहाँ हैंड पम्प के पास बैठा अमरू अपना अकेला कुर्ता धो रहा है। कुर्ता धोने के बाद वह बड़ी अंगीठी की ओर आएगा। तवे पर सुबह की पकी रोटियाँ सेकेगा और सुबह की पूरियों से बचे सालन के बर्तन से सालन निकालेगा, खाएगा और फिर······

और फिर एक बीड़ी पिएगा।

× × ×

अमरू जब होशियारपुर की तहसील ऊना के गाँव खड़िया से भाग कर आया, तो उसके सिर पर एक लम्बी चोटी थी। वह पुराने विचारों के सनातनधर्मी गाँव में पला था, जहाँ उसके बाप के पास चौदह कनाल ज़मीन थी। उसकी माँ उसे हिंडोले में ही छोड़कर परलोक सिधार गई थी। सात वर्ष तक तो वह किसी-न-किसी प्रकार पलता रहा परन्तु जब उसके बाप ने दूसरा विवाह कर लिया तो उसकी सौतेली माँ ने उसका जीना दूभर कर दिया। हर समय गाली-गलौच, हर समय थप्पड़ तमाचा। कुछ समय तक तो उसने सहा परन्तु एक दिन मित्रों के सिखाने पर बाप से शिकायत कर दी। परिणाम वही हुआ, जो होना था। बाप ने उसकी खूब पिटाई की और अब अमरू हलवाई की दुकान

पर है हैंड-पम्प के समीप बैठा अपना इकलौता कुर्त्ता धो रहा है। अब वह चतुर है। वे दिन गए जब जगतसिंह चाय वाले ने उससे एक मास काम लेकर, चम्मच का चुराने का झूठा दोषारोपण करके उससे निकाल दिया था और एक पैसा भी नहीं दिया था। जब रोज़ा होटल वालों ने उसे पन्द्रह रुपये मासिक पर नौकर रख कर दस दिनों के बाद एक पाई दिए बिना अलग कर दिया था। वे दिन गए, जब उसके सिर पर एक लम्बी-सी चोटी थी और जागकर कँवलनेत्र और हनुमान चालीसा पढ़ा करता था। अब वह जाग कर एक बीड़ी पीता है। फिर कमेटी के शौचालय में नित्य-कर्म से निवृत्त होकर एक कप चाय पीता है। काम करता है और······जब एक मास के बाद वेतन मिलता है तो मलमल का नया कुर्त्ता सिलवाता है। उसके पास हर मास बारह रुपये बच जाते हैं। उन्हें वह पंडित दयालचन्द के पास जमा करवा रहा है। जब यह राशि बढ़कर पाँच सौ हो जाएगी, तो वह गाँव वापस चला जाएगा। क्योंकि सुना है, उसका बाप मृत्यु-शैया पर है। चौदह कनाल ज़मीन यदि उसकी सौतेली माँ के सम्बन्धियों ने हथियाली तो बहुत बुरा होगा। यदि वह बाप के जीते-जी पहुँच जाए और उसके चरणों में सिर रखकर अपनी भूल के लिए क्षमा प्राप्त करले तो सम्भव है, सब ठीक हो जाए। अन्यथा उसे जाकर तहसीलदार के पास मुक़द्दमा करना पड़ेगा। कुछ भी हो, अमरू वहाँ जाकर अमरनाथ न भी बना तो भी शहर से गाँव अच्छा है। यहाँ जूठे बर्तन माँजने से गाँव में खेती करना अधिक श्रेष्ठ है। और फिर वहाँ फ़कीरचन्द की लौंडिया पार्वती भी तो है। नाक में लौंग, कानों में बालियां, तांबे की तरह चमकता हुआ रंग, ठुमक-ठुमक चलती हुई —वह पाँच सौ रुपया ले जाकर फ़कीरचन्द की झोली में डाल देगा और कहेगा, 'चाचा, कुल पूँजी यही है। छः वर्षों में इतना ही कमाया है। यह रख लो और मुझे अपनी लौंडिया के साथ फेरे दिलवा दो। मैं उसे सुखी रक्खूँगा चाचा······"

अमरू इस समय कुर्त्ता धो रहा है। पाँच सौ रुपया जमा करने के

बाद वह बम्बई नहीं भागेगा, अपने गाँव लौट जायेगा। गाँव की धरती का आकर्षण अमरू को कहीं नहीं जाने देगा।

परन्तु लड्डू का कोई गाँव नहीं है। वह तो नगर लू, धूल और गंदगी की ही उपज है। इसलिए वह सोचता है कि जब भी बत्तीस रुपये जमा हो जाएं, वह बम्बई भाग जाए और जाकर मधुबाला के बावर्चीख़ाने में नौकरी कर ले। लड्डू ने जब से होश सँभाला है, वह इसी हलवाई के पास है। उसने हलवाई के वे दिन भी देखे हैं, जब वह जलेबियों की साधारण-सी दुकान लगाता था और ये दिन भी, जब उसने पन्द्रह-बीस केबिन फ़ैन लगाकर दुकान के भीतर बैठने का स्थान बना लिया है, कुर्सियाँ और सोफ़े ला रखे हैं। अर्धछत्ती में एक अलग रेस्टारेंट बन गया है। अब जबकि दही के पंदह कूंडे जमने लगे हैं और छाछ पीने वालों को बारी नहीं मिलती—लड्डू ने यह सब अपनी आँखों से देखा है। उसकी आयु चौदह वर्ष है। वह अमरू का समवयस्क है परन्तु उसकी चौदह कनाल ज़मीन नहीं है और सौतेली माँ नहीं है और कोई गाँव नहीं है। वह तो अकेला है—निपट एकाकी—उसे भी बीस रुपये मासिक वेतन मिलता है, परन्तु वह फ़िल्म प्रतिदिन देखता है और बीड़ी के स्थान पर लैम्प के सिग्रेट पीता है। इसलिए वह हलवाई का कर्जदार रहता है। वेतन के दिन उसे कभी पूरे बीस नहीं मिले। कभी चार मिलते हैं, कभी पाँच। उसने स्वयं भी कभी हिसाब नहीं किया कि वह इस मास के दौरान कितने रुपये पेशगी ले कर खा चुका है। इसलिए वह जीवन-भर बत्तीस रुपये आठ आने इकट्ठे नहीं कर सकता कि उनसे बम्बई का टिकट ले और मधुबाला का बावर्ची बनने के लिए पहुँच जाए—यूँ भी उसे पंडित दयालचन्द पर विश्वास नहीं है। इसलिए वह उसके पास पैसे जमा करवाने से झिझकता है। वह समझता है, अमरू पंडित जी से अपनी रक़म कभी वापस नहीं ले सकेगा, जब तक कि वह·······

पंडित दयाल चंद······

घंटाघर के चौक से बाज़ार की ओर मुड़ते हैं तो दाएं हाथ एक छोटी सी गली है पंडित दयालचन्द उसी में रहते हैं। लम्बा, मांसल गठा शरीर, गंदमी रंग, सिर पर इक्का दुक्का बाल, आँखों पर गम्भीर चश्मा, कुर्त्ता, धोती और चप्पल, कंधों पर दोशाला, पूरे नेता हैं। समाज सुधार सभा के प्रधान हैं। एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करते हैं। तीन चार बार जेल हो आए हैं। गली में ही कार्यालय है। घर भी है। दो लड़कियाँ हैं, एक पत्नी है, लड़का नहीं है......

'व्राह बेटे, खूब कहा! भारत की राजनीतिक-अवस्था का इससे सुन्दर विश्लेषण सम्भव नहीं है। मैं यहाँ खड़ा कुछ देर से आप लोगों की बातें सुन रहा था। तो तुम्हें एक बरस से काम नहीं मिल पाया है?"

घंटाघर के चौक के एक किनारे पर खड़ा अल्पायु कोमल सा लड़का घबड़ा कर एक बार पंडित जी की ओर देखता है और फिर अपने मित्र की ओर, जिसे इन्हीं दिनों एक दुकान पर काम मिला है, और जिससे वह अभी-अभी बातें कर रहा था।

'जी हाँ......" उसके मुख से बड़ी कठिनाई से ये शब्द निकल पाते हैं, "वाह, तुम्हारे विचार तो बड़े पवित्र हैं और सामाजिक सूझ भी कम नहीं! आश्चर्य है, तुम जैसा लड़का बेकार है......तुम मेरे दफ्तर आना। मैं तुम्हें काम दूंगा। काम सिखाऊँगा भी। पत्रकार बनाऊँगा। हिन्दी आती है ना? उर्दू? कुछ कम? कोई बात नहीं। तुम मेरे दफ़्तर आना!"

लड़के की आँखों में क्षण भर के लिए चमक उत्पन्न हुई है। घंटाघर की धूल और लू में भी उसके लिए फूल खिल उठे हैं। नौकरी का अर्थ—जीना और जीना बहरहाल पड़ता है। वह दुगने सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से पंडित जी की ओर देखता है। उनके सुन्दर व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। हाथ जोड़ता है और फिर कोमलता से कहता है, आप का दफ़्तर कहाँ है जी?"

"वाह; तुम नहीं जानते" पंडित जी होठों में मुस्कराते हैं। अल्पा..., लड़के के कंधों पर अपने अधेड़ भारी भरकम हाथ रखते हैं "वह सामने गली है न ? उसी में, दाहिने हाथ, ऊपर बोर्ड लगा है। मेरा नाम दयालचन्द है। बोर्ड-मेरे साप्ताहिक पत्र सोच" का है। तुम आज शाम या कल सुबह आना। मैं अभी इसी क्षण ही नौकरी पर तो नहीं लगा सकूंगा। परन्तु काम जरूर सिखाऊँगा। एक दो मास में ही तुम सौ डेढ़ सौ पैदा करने लगोगे। आना जरूर······"

और वे अल्पायु नवयुवक के कोमल कंधों को थपथपा कर आगे बढ़ जाते हैं। लड़का अपने भाग्य पर गर्वित है। वह पत्रकार बनेगा। उसके चेहरे से खुशी खिली पड़ रही है। उसके भाग्य का सितारा चमकने वाला है। वह आज शाम ही दयालचन्द जी के दफ्तर जाएगा। उसे एक बड़े मिट्टी भरे मेज पर बिठाया जाएगा। पत्र के पुराने अंक दिखाए जाएंगे। लड़का अल्पायु है, कोमल है। पंडित जी अधेड़ हैं, पत्नी बहुधा बीमार रहती है और पंडित जी हर सप्ताह एक नये लड़के को पत्रकार बनाते हैं।

इसीलिए तो लड्डू कहता है कि अमरू को अपनी रकम पंडित जी से वापिस नहीं मिलेगी। जब तक कि वह······परन्तु कौन जाने, इसके बाद भी पैसे वापिस न मिलें, क्योंकि इन्हीं पैसों से तो दूसरे लड़कों को पत्रकार बनाया जाता है! और लड्डू न अमरनाथ बनना चाहता है न पत्रकार। वह तो बम्बई जाकर मधुबाला का रसोइया बनना चाहता है। इसीलिए वह ऊपर अर्धछत्ती में एक केबिन-फ़ोन खोल कर कुर्सी पर अर्ध लेटा है और एक लैम्प की सिग्रेट पी रहा है।

वह जानता है कि उनकी दुकान के बिल्कुल साथ पिशावर होटल के बैरे कभी लैम्प की सिग्रेट नहीं पीते। कैवन ए और कैंची की सिग्रेटें पीते हैं। वह जानता है कि इन बैरों का दैनिक टिप उसकी पन्द्रह दिनों की तन्ख़्वाह के बराबर है परन्तु वह कभी गिला नहीं करता, गिला करना उसने सीखा ही नहीं!

पिशावर होटल, पहले शायद पिशावर में रहा है, परन्तु अब वह इस नगर में ही है। इसकी कई विशेषताएँ हैं। इसका मोटा मालिक सबसे बड़ी और पहली विशेषता है। इस समय होटल सुनसान है। बाहर रंग-बिरंगी बोतलों पर गीले कपड़े पड़े हैं ताकि गर्मी से फट न जाएं। रेडियोग्राम भी चुप है। भीतर कोई ग्राहक नहीं। मोटा मालिक अब भी काऊंटर के पीछे केवल एक कमीज और कच्छा पहने बैठा है। कच्छा उसके मोटे पेट के ऊपर चढ़ा हुआ है, ताकि यदि कमीज नीचे तक न भी पहुँचे, तो भी वह नंगा न हो। बैरे सभी ऊपर वाले रिहायशी कमरों में सो रहे हैं। रात के एक बजे तक जागने के बाद सुबह आठ बजे फिर तैयार हो जाना बड़ी बात है। इसलिए वे दोपहर के खाने के बाद फिर सो रहते हैं—बड़ी-बड़ी मूँछों वाला हेड-बेरा अकेली केबिन में बैठा सिग्रेट फूँक रहा है। उसकी मूँछे मकड़े के जाले की तरह हिल रही हैं। बड़ी गर्मी है। बाहर लू है। भीतर पंखे की गर्म हवा है और रामचन्द्र के घर से आज तार आया है।

रामचन्द्र के घर से आज तार आया है!

रामचन्द्र पंद्रह वर्ष पूर्व घर से निकला था। एक बूढ़ी माँ और दो छोटे भाइयों को भगवान् के सहारे छोड़कर कमाने के लिए। उसने गाँव से बारह मील दूर कस्बे से मोटर पकड़ी थी। भोले पहाड़ियों की तरह, जब वह पहली बार नगर आया था तो उसकी मुख-मुद्रा किसी प्रकार भोलेनाथ से कम नहीं थी। छः हलवाइयों की दुकानों पर पूरे एक वर्ष बिना वेतन के नौकर रहकर उसने यह पाठ पढ़ा था कि इस संसार में ईमानदारी से गुजारा होना कठिन है और उसने ईमादारी को तिलांजलि देकर पहली बार राम रक्खा हलवाई की तिजौरी से पाँच रुपये चुराए थे। पंद्रह दिन पाँच रुपये का एक-अकेला मुड़ा-तुड़ा नोट उसके पायजामे के 'नेफ़े' में खोंसा रहा था। इस दौरान में इस नोट की खोज होती रही थी। उस पर संदेह होना एक असम्भव बात थी। हलवाई उसे इस योग्य नहीं समझता था कि वह पाँच रुपये का नोट चुरा सकता है।

सिग्रेट वह पीता नहीं था। सिनेमा उसने कभी नहीं देखा था। कोई ऐब उसमें नहीं था। इसलिए जब चोरी की बात ठंडी पड़ गई तो उसने पाँच रुपये का मनीआर्डर घर के पते पर करवा दिया था। मनीआर्डर की रसीद वापस आने के बारे में उसे बिल्कुल ज्ञान नहीं था। इसलिए जब दस-बारह दिनों के बाद रसीद लौट कर आई, तो दुकान पर शोर मच गया। हलवाई ने उसे तत्काल निकाल बाहर किया—परन्तु इस घटना के बाद रामचन्द्र एक कार्य-कुशल संसारी व्यक्ति बन गया। इसलिए पाँच वर्षों के बाद जब वह गाँव वापस चला गया तो उसके पास चार ट्रंक थे, दो बिस्तरे थे और पाँच-सौ रुपया नक़द था। वहाँ जाकर उसने घर की मरम्मत करवाई। उसके वापस आने पर गाँव में हलचल मच गई। उसके बढ़िया सामान को देखकर देहातियों की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। उसके लिए बहू की खोज की गई। उसका विवाह हुआ। वह दो-तीन मास गाँव रहा। फिर अपने एक छोटे भाई को साथ लेकर शहर आ गया—अब वह हर छः मास के बाद गाँव जाता है। उसके दोनों छोटे भाइयों के विवाह हो चुके हैं। एक बियर शाप में नौकर है, दूसरा एक होटल में बैरागीरी करता है। वह स्वयं पिशावर-होटल पर हेड-बैरा है। बिल्कुल ऐसिस्टेंट मैनेजर है। उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता नहीं हिल सकता। गाँव में उसके चार बच्चे हैं, पत्नी है, अच्छा नया मकान है। परन्तु आज उसके घर से तार आया है।

तार में लिखा है कि माँ मर गई है।

माँ! सत्तर वर्ष की बूढ़ी, जिसने बाप की मृत्यु के बाद हज़ार कठिनाइयों से भाइयों को पाला, आज मर गई है। क्रियाकर्म के लिए उसे जाना पड़ेगा। छोटे भाई स्वार्थी हैं। वैसे चाहे गाँव के दस चक्कर लगा आयें, इस काम के लिए नहीं जायेंगे। खर्च होगा। उसे अवश्य जाना पड़ेगा। न गया, तो गाँव में, बिरादरी में नाक कट जायेगी और होटल का मालिक बाबू कहता है, 'रामचन्द्र, यदि तुम चल दिए, तो परसों

मन्त्री की जी पार्टी में सर्विस क्या ख़ाक होगी ? वहाँ से पंद्रह-बीस रुपये टिप मिलने की भी आशा है और इधर माँ मर गई है। बूढ़ी को भी इन्हीं दिनों ही मरना था।

और इस हरामज़ादी पृथा को को भी इसी समय आना था !

मोटा मालिक काऊंटर के पीछे सो नहीं रहा है। उसकी एक आँख खुली है, शिवजी भोले की तरह उसकी एक आँख खुली है, जैसे न देखते हुए भी संसार को देख रहा हो। काऊंटर के बाहर से केवल उसका चेहरा, कंधे और पेट का कुछ भाग दिखाई देता है। इस समय वह सोच रहा है। किसी एक विशेष बात के विषय में नहीं, वह केवल सोच रहा है। सैंकड़ों वस्तुओं के विषय में सोच रहा है। वैसे वह सोचता बहुत कम है। उसकी जीवन-चर्या में सोच का भाग बहुत कम है। सोच के बिना भी उसका गुज़ारा हो सकता है। परन्तु आज.......

सुबह-ही-सुबह उसके भेदिये ने आकर सूचित किया था कि आज शाम को ऐक्साइज़ स्टाफ़ का छापा पड़ेगा। विचित्र लानत है। आज ही जागीरदार रणवीरसिंह आने वाले थे। यदि आज छापे की सूचना न होती और जागीरदार रणवीरसिंह की पूरी पार्टी आती तो डेढ़ दो सौ का बिल बनता। वह तीन-चार मुर्गों का आर्डर अभी से कर देता, लानत है। ये ऐक्साइज़-स्टाफ़ वाले भी एक लानत हैं।

मोटाराम की चिन्ता की धारा ऐक्साइज़ इन्सपेक्टर की ओर मुड़ी। क्या नाम बताया था ? दीनानाथ भार्गव ? ब्राह्मण है। अच्छी नौकरी पर है और क्वारा है। यदि उसके घर-बार का पता चल जाए तो पुष्पा का रिश्ता हो सकता है और पुष्पा का रिश्ता हो जाये तो उसके कंधों से एक बड़ा बोझ उतर सकता है। कंधों से बोझ तो तब भी उतर सकता है, यदि उसके पास चालीस-पचास हज़ार रुपया इकट्ठा हो जाये। वह होटल बेच कर दिल्ली चला जायेगा। वहाँ जाकर किसी बड़े धनी घराने में पुष्पा की शादी कर देगा और फिर कोई छोटा-मोटा काम आरम्भ कर देगा।

मोटाराम की मोटी बुद्धि और लोभ तथा स्वार्थ से भरे मोटे हृदय में भी अपनी बिन मां की बच्ची को अच्छे घर में व्याहने की अभिलाषा है। वह लाख गुण्डा और बदमाश होने पर भी एक बाप है, एक स्नेही पिता है।

कुछ देर में ही साँझ का पहला ग्राहक आयेगा। उसके साथ ही स्नेही पिता फिर होटल का मालिक बन जायेगा। उसका आलस्य और आलस्य के साथ उसकी चिन्ता समाप्त हो जायेगी। वह रामचन्द्र और उसके सहायक बेरों को कृत्रिम क्रोध और कठोरता से डांटेगा और उसके साथ ही सांझ आरम्भ हो जायेगी। इक्के-दुक्के ग्राहक आयेंगे। चाय पियेंगे, पैसे देंगे और चले जायेंगे परन्तु ये साधारण ग्रहक होंगे। साधारण ग्रहाक पिशावर होटल में आदरणीय नहीं समझे जाते। टिप लेकर भी बैरे उन्हें सलाम नहीं करते। पिशावर-होटल को तो बस खास ग्राहक चाहिएँ। सुबह हो, दोपहर हो, सांझ हो, या रात हो, बस खास ग्राहक चाहिएँ, खास……

पृथा साहिब ने स्कूटर का थ्राटल बंद किया। फिर एक क्षण के लिए मरकरी के गागल्ज़ उतारते हुए अपनी आँखें बंद कर लीं। पाँच फुट दो इंच कद। बचगाना चेहरे पर बे मौसम और बे जगह जबरदस्ती उगाई हुई मूंछें जिनसे चेहरे का बचकाना प्रभाव कभी छुप नहीं पाता। गठा हुआ नाटा शरीर, बुशशर्ट और पतलून और बाटा की चप्पलें।

पृथा साहिब का कद स्कूटर के अनुसार ही है!

मरकरी के गागल्ज़ से चेहरे पर बे मौसम और बे जगह जबरदस्ती उगाई हुई मूँछों पर टहोका दिया। घड़ी देखी। अभी केवल दो बजे थे। सामने पिशावर होटल खामोश था। कोइ बैरा दिखाई नहीं पड़ रहा था। केवल मोटा मालिक काऊंटर पर बैठा ऊंघ रहा था। रेडियोग्राम भी चुप था। पंखे भी चुप थे। केवल एक केबिन-फ़ैन चल रहा था (बड़ी-बड़ी मूँछों वाला रामचन्द्र केबिन में बैठा सोच रहा था, इस हरामजादी पृथा को भी इसी समय आना था?)।

पृथा साहिब को गुस्सा आ गया !

पृथा साहिब को क्रोध आना स्वाभाविक है। वह पिशावर-होटल के खास ग्राहक हैं। केवल ग्राहक ही नहीं; यदि संरक्षक कहा जाये, तो शायद अधिक उपयुक्त होगा। दिन के बारह घंटों में से चार घंटे यहाँ व्यतीत करते हैं, कुछ नहीं, तो भी कम-से-कम तीस रुपये प्रतिदिन पिशावर होटल को अर्पित करते हैं। पृथा साहिब दोपहर की गर्मी और लू और धूल में थके-मांदे स्कूटर पर आयें और कोई बेरा स्वागत के लिए न निकले। कोई बढ़कर स्कूटर न थामे, कोई आकर सलाम न करे, पिशावर-होटल में हलचल पैदा न हो। पृथा साहिब को क्रोध आना स्वाभाविक है !

वह एक बार जोर से खंकारे। फिर अपनी बचकाना नाक के नथने फैला कर गुर्राये। उनकी मूँछें हिलीं। जोर से पाँव पटक कर प्रकट रूप में धूल झाड़ी और वास्तव में अपने आगमन की घोषणा की। होटल का मालिक मोटाराम चौंक पड़ा। उसने अपनी बिना पलकों की, मुर्गी जैसी गोल-गोल आँखें घुमाईं। फिर काऊंटर के पीछे ही उठकर खड़ा हो गया।

"आइए पृथा साहिब !" उसने वहीं से ही कहा। ओए हरामी रत्नू, ओए पाशू—हरामियो ! कहाँ मर गए हो तुम ? शर्म नहीं आती ? रामचन्द्र कहां है ? बाहर पृथा साहब खड़े हैं—और तुम, माँ के रसगुल्लो अन्दर घुसे बठे हो ? बाहर निकलो !"

मोटा राम ने यदि केवल कच्छा ही न पहना होता और यदि कच्छे का नाल इस समय ढीला होकर पेट के नीचे खिसक न गया होता तो पृथा साहब के स्वागत के लिए वह स्वयं आगे बढ़ता, परन्तु उसकी आवाज ही उसके व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती थी। पेशावर-होटल में एक हलचल-सी पैदा हुई, जैसे शताब्दियों से निश्चल खड़े जहाज के फटे बादबानों को हवा का एक तेज झोंका जागृत कर गया हो। दो बेरे

दौड़ते हुए ऊपर की छत से नीचे उतरे। रामचन्द्र भाग कर बाहर आया। उसने मक्खी उड़ाने का-सा इशारा करते हुए पृथा साहब को सलाम किया। होठों-ही-होठों में उन्हें असमय आने पर गाली दी। फिर बड़े सम्मान से स्कूटर थाम लिया। पृथा साहब नृप-गति से आगे बढ़े। जानी-पहचानी दो सीढ़ियों पर चढ़े। होटल में प्रविष्ट हुए। एक विरक्त-मुस्कान से मोटे की ओर देखा, जो अब भी काऊंटर के तख्तों से सटकर, कमर से नीचे गिरते हुए कच्छे को बचायें खड़ा था। फिर तीन-चार सीटें छोड़ कर पहली केबिन में घुसे। मरकरी की गागल्ज़ मेज़ पर रख दीं। एक बार ज़ोर से खंकारे। फिर नथने फुलाकर ज़ोर से साँस छोड़ दी, जैसे बाहर की सारी गर्मी, सारी लू और सारी धूल इस एक सांस में बाहर निकाल दी हो।

पृथा साहब आज बहुत उदास हैं। वह इन्द्रराज के साथ बालगा में सुबह से ही फ़्लाश खेलते रहे हैं और डेढ़ हज़ार के नीचे आ गये हैं। डेढ़ हज़ार पैदा करने के लिए उन्हें अपने मिल-ओनर बाप से क्या कुछ हेरा-फेरी न करनी पड़ेगी। पृथा साहब आज वाक़ई बहुत उदास है। बहुत गर्मी है। बीयर आनी चाहिए। बर्फ़ आनी चाहिये और ठंडे, बर्फ़ में लगे आमों की फाशें आनी चाहिएँ। और फिर जब गर्मी भाग जाये और उसका स्थान एक हल्की मस्ती ले-ले और शाम हो जाये और पृथा-साहब का एक अकेला साथी कपूर आ जाये—तो कुछ और भी आना चाहिए। पृथा साहब बड़े कांइया आदमी हैं। वह अपने शरीर की पुकार को खूब समझते हैं। आज सुबह से ही यह पुकार कुछ तेज़ हो रही है—जब कुछ और भी आ जायेगा तो पृथा साहब नीचे केबिन में नहीं बैठेंगे। वह ऊपर वाले प्राइवेट कमरे में चले जायेंगे। होटल के रजिस्टर पर हस्ताक्षर करके यात्रियों की भाँति एक कमरा किराये पर ले लेंगे। अब यह उनका अपना घर है और घर में बैठकर लोग पी भी सकते हैं और······और सभी कुछ कर सकते हैं! किसी को भीतर आने की अनुमति नहीं, कोई टोक कर करे भी क्या? इसलिए वाइन-शाप से

ह्विसकी आयेगी। पृथा साहब का बचकाना चेहरा, जिसका बचकाना प्रभाव छुपाने के लिए वह जगह और बे मौसम मूँछें उगाई गई हैं, द्विगुणित नशे से रक्तिम हो उठेगा और फिर······

और फिर होटल वालों की चांदी होगी, चांदी ! उस दिन उनका बिल तीस रुपये नहीं, डेढ़-सौ रुपये बनेगा और डेढ़ हजार में यदि एक-सौ पचास और जोड़ दिए जायें तो केवल साढ़े सोलह-सौ बनते हैं— हेरा-फेरी तो एक-जैसी ही है, चाहे लाला जी से पंद्रह-सौ लिये जाय, या साढ़े सोलह-सौ !

पृथा साहब बिगड़े रईस नहीं हैं। उन्हें पैसा कमाना भी आता है। जितना वह व्यय करते हैं, उतना तो वह बैठे-बैठे कमा लेते हैं। अभी पिछले सप्ताह ही तो उन्होंने बातों-ही-बातों में आई० जी० पुलिस से चालीस हज़ार जोड़े जुराब, और बारह हज़ार ऊनी बंडियों का आर्डर ले लिया था। टेंडर-वेंडर की देखी जायेगी। समय पर भर लेंगे और स्वीकृत तो होना ही है ! आई० जी० को क्या चाहिए। कुल दो-सौ ही तो पार्टी पर खर्च हुए थे और या फिर सौ रुपये वे थे, जो प्रकाशो ले गई थी !

पृथा साहब बिगड़े रईस नहीं हैं, बिलकुल नहीं हैं। किसने कहा कि वह हैं ? इसलिए तो पिशावर-होटल वाले साधारण ग्राहकों की परवाह नहीं करते। इसीलिए तो दोपहर की नींद उचाट होने के बावजूद बेरे हर्षित, उल्लसित दौड़ रहे हैं। इसलिए तो रामचन्द्र स्वयं बीयर-शाप से बीयर लेने भागा जा रहा है। यही कारण है कि मोटे मालिक ने रेडियोग्राम फिर से लगा दिया है। "मैंनू रब दी सोंह तेरे नाल प्यार हो गया, वे चन्ना सच्ची-मुच्ची !"

× × ×

अपने चांद से प्यारे मोटे मालिक की बच्ची पुष्पा को भी थी। हाय, कितना प्यार था उसे अपने चांद से ! वह उसे जब अकेले में मिलती, तो देख-देखकर ही पागल हुई जाती। वह कहता, "तुम पागल

हुई हो !' यह कहती, "मैं पागल ही अच्छी हूँ। मुझे अपने चेहरे की ओर देखने दो ! बस देखने दो जी भरकर चांद से चेहरे की ओर !" परन्तु उसके पिता जी ने उसके आकाश से जब यह चाँद नोचकर फेंक दिया और सतप्रकाश घायल होकर सिविल हस्पताल की एक शय्या पर पड़ गया, तो पुष्पा का जीवन अन्धकारमय हो गया। उसके संसार में एक अथाह अँधेरा फैल गया, जिसे चीरने के लिए शायद प्रकाश की एक किरण ही काफ़ी हो, परन्तु अब तो वह किरण भी घायल हो गई थी। उसने उन्हीं दिनों सुना कि एक इंजेक्शन गलत लग जाने से सतप्रकाश की दायीं भुजा निष्क्रिय हो गई है और उसमें विष इस सीमा तक फैल गया है कि भुजा कटवाए बिना अब चारा नहीं ! विष—! पुष्पा के हृदय में भी है। उसकी नसों में घृणा बन कर दौड़ रहा है। उसके मन में क्रांति की भावनाए उत्पन्न कर रहा है, परन्तु फिर भी यह विष उस सामाजिक व्यवस्था को नष्ट नहीं कर सकता, जिसके लिए उसके पिता जी ने सतप्रकाश को अपने गुण्डे बेरों से पिटवाया था— सतप्रकाश उसका चांद जो था ! और चाँद के पास केवल चमक है, धन नहीं है। सतप्रकाश के पास भी केवल चमक थी, धन नहीं था— चमक, विद्या की, सज्जनता की, चरित्र की और एक उज्जवल भविष्य की शुभ आशा की। धन नहीं था, जिससे लड़कियाँ ब्याही जाती हैं और धन नहीं था जिसके सामने चाँद की चमक भी हेच है।

इसलिए यह विष पुष्पा के हृदय में फैलता जा रहा है। उसकी नसों में घृणा बनकर दौड़ रहा है। उसके मन में विद्रोह की भावनाएँ उत्पन्न कर रहा है और कुछ दिनों में ही इस असहाय कोमल जीवन को ले डूबेगा। उसे खाँसी आने लगी है। घर वालों से चोरी वह खून भी थूकती है। खाँसी बढ़ेगी और बढ़ेगी, फिर और बढ़ेगी।

पुष्पा में इतना साहस नहीं है कि वह लहू-भरी-थूक सुभाष के मुँह पर फ़ेंक कर कहे, "तुम इसी योग्य है ! तुमने मुझसे मेरा चाँद छीना, मैं तुम्हारे मुँह पर थूकती हूँ !" इसीलिए तो वह चुप है और रिकार्ड

बज रहा है, "मैंनू रबदी सौंह, मेरे नाल प्यार हो गया वे चन्ना सच्ची-मुच्ची !"—परन्तु अपने चाँद से प्यार तो······

बाहर लू का एक तेज झोंका आया है और धूल उड़कर एक मेघ के रूप में सारे वातावरण पर छा गई है। यह मेघ, जो मेघ नहीं है, उसकी प्रेतात्मा है, उसका भूत है। हर समय चौक घंटाघर पर छाया रहता है। कभी यह दिखाई पड़ता है, कभी नहीं पड़ता। परन्तु उसके अस्तित्व से इनकार सम्भव नहीं।

× × ×

दोपहर आगे बढ़ चली है। धीरे-धीरे समय के घिनौने-आकार वाली गली से दिन रेंग रहा है, टूटी कमर वाली कुतिया की भांति ! दोपहर आगे बढ़ चली है ! बढ़ती ही जा रही है। सड़क पर से गुजरने वालों की संख्या बढ़ गई है। लीजिए, वह एक आदमी रिक्शा के नीचे आते-आते बचा है। उसकी मोटी-मोटी गंदी गालियाँ हवा में दाएं-बाएं आक्रमण कर रही हैं और रिक्शा वाला दूर रिक्शा भगाए हँसता जा रहा है। दोपहर आगे बढ़ चली है !

गोल वृत्त में लगे बोर्डों पर दातुन वालियों ने फिर उल्टी चारपाइयाँ लटका दी हैं। पंडित नेहरू की तसवीर पर चारपाई सीधी लटकी है। उसके ऊपर एक कपड़ा लटका कर नीचे एक वर्ग गज स्थान पर छाया बना ली गई है। यहाँ तीन दातुन वालियाँ लहँगे बिछाए बैठ गई हैं। उनके साथ धूप में कीकर की लम्बी-लम्बी टहनियों के गट्ठे रखे हैं। इस समय वे बातें कर रही हैं। कुछ देर में वे लड़ेंगी। ऊँचे-ऊँचे, न समझ आने वाली वाणी में एक-दूसरे को गालियाँ देंगी, कोसेंगी। फिर अपने स्थान से अलग-अलग हो जाएंगी। उनके नंग-धड़ंग, काले मैले-कुचैले बच्चे दौड़ते आयेंगे और उनकी टांगों से चिपट जायेंगे, तब शाम शुरू होगी—शाम अभी बहुत दूर है। इसीलिए तो दातुन वालियाँ एक सामान्य स्थान पर बैठी गप्पें हाँक रही हैं। शाम अभी बहुत दूर है।

उनके साथ ही रेडक्रास लाटरी का कैम्प लगा है। धूप में छोटा टेंट यूँ खड़ा है जैसे अथाह शून्यों में एक छोटी-सी शस्य श्यामल धरती तैर रही हो। इसमें इस समय केवल एक मनुष्य बैठा ऊंघ रहा है। लाटरी की पर्चियाँ और कापियाँ और कैश-बक्स उसके सामने तिपाई पर पड़े हैं। लाऊडस्पीकर की बैट्री बन्द है; क्योंकि लाऊडस्पीकर पर लाटरी की टिकटों के विक्रय के लिए आवाज़ लगाने वाला वहाँ नहीं है। वह अपने घर खाना खाने गया है। अभी थोड़ी देर में वह आयेगा। बैठकर माइक्रोफ़ोन मुँह से लगाएगा, उसे यूँ टैस्ट करेगा, जैसे किसी वस्तु का स्वाद लेने के लिए चक्खा जाता है। फिर एक भारी सुस्त आवाज़ में कहेगा,

"नोटों की आवश्यकता है, तो मेरे पास आ जाओ। गिन कर दस हज़ार ले लो···आ जाओ···आ जाओ······टिकट एक रुपया··· भाग्य बना लो······भाग्य और साथ ही रेडक्रास का भी लाभ कर दो······नाले पुन······नाले फलियां······नोट दूँगा······नोट······ गिन कर पूरे दस हज़ार······डिप्टी कमिश्नर बहादुर मशीन के द्वारा लाटरी निकालेंगे। केवल दस दिन रह गये हैं, दस दिन, दो-सौ चालीस घंटे······नोटों की जरूरत है, तो मेरे पास आ जाओ······"

परन्तु अभी वह नहीं आया है, इसलिए शाम नहीं हुई है। अभी शाम बहुत दूर है। छोटे टेंट में रैडक्रास का केवल एक आदमी है। ऊँघ रहा है। कभी लू के झोंके से उसके कागज और पर्चियाँ उड़ने के लिए पंख खोलती हैं, तो वह चौंक उठता है। झपटा मार कर कोई कंकर उनके ऊपर रख देता है और फिर ऊंघ जाता है।

गुप्ता कहता है, "विचित्र फ्राड है यह लाटरी भी! पिछले बरस दो टिकट खरीदे। इससे पिछले वर्ष पाँच टिकट खरीदे। कभी अपने नाम की तो निकली नहीं!"

जब भी गुप्ता यह बात कहता है, उसके साथ बिस्कुटों की दुकान वाला बाबू अमरनाथ, चश्मे के मोटे-मोटे शीशों से एक बार झाँक कर

उसे देखना है, जैसे गुप्त आदमी न हो, नये नमूने के बिस्कुटों का एक डिब्बा हो, अमरनाथ को गुप्ता की ये उत्तरदायित्व-विहीन बातें बिल्कुल पसन्द नहीं हैं। इसलिए वह रेडक्रास की लाटरी के उद्देश्य और अधिकारों के रक्षार्थ मैदान में निकल आता है।

"गुप्ता जी, आपको क्या पता है ? आप पान बेचिए, बनारसी और देसी। कत्था लगाइये, चूना और मुरादाबादी तम्बाकू की बात कीजिए। आप क्या जानें कि इस लाटरी में बेईमानी बिल्कुल नहीं हो सकती। लाटरी की टिकट निकालने की मशीन मद्रास से मँगवाई गई है। जिन लोगों के छोटे-बड़े इनाम निकलेंगे, उन्हें अवश्य मिलेंगे। जो रक़म लाभ के रूप में बच जायेगी, उससे एक नई डिस्पेंसरी खोली जाएगी। आप क्या जानें, जन-कल्याण क्या वस्तु है ? आप पान बेचिए, पान !"

गुप्ता हार नहीं मानता। अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए उसके पास ठोस बात कोई नहीं। फिर भी वह अमरनाथ से हार नहीं मानता। वह अपनी बात पर जोर देकर कहता है, "परन्तु पिछले वर्ष जिनके दस या पाँच रुपये के इनाम निकले, उन्हें तो मिले ही नहीं। अपने पेन्टर सन्तराम का भी पाँच का इनाम निकला था। जब लेने गया, तो रुपये बांटने की मेज़ पर ए० डी० एम० बैठे थे। कहने लगे, पाँच रुपये रेडक्रास को दान कर दीजिये। आप पाँच रुपये लेते हुए लज्जा अनुभव नहीं करते ? लीजिये पाँच रुपये के दान की रसीद !' सन्तराम लौट आया था। इसी प्रकार सबसे रुपये हथिया लिए गए। कहते हैं, जिस मिस्त्री को पहला इनाम दो हज़ार मिला था, उससे भी पाँच-सौ रुपया दान वसूल कर लिया गया······क्या यह ईमानदारी है ?"

अमरनाथ फिर चश्मे के मोटे शीशों के गढ़ से झाँक कर गुप्ता की ओर देखता है। "गुप्ता जी, पाँच-दस रुपये यदि दान ले लिए तो

ए० डी० एम० ने जेब में तो नहीं डाल लिए। हम लोगों पर ही तो खर्च होंगे ? आप भी कमाल करते हैं !"

गुप्ता ग्राहक को केवन ए की दो सिग्रेटें देते हुए फिर कहता है, "परन्तु मेले पर जो हजारों रुपये खर्च होंगे। शाम को दावत के नाम पर जो शराबें उड़ेंगी। उनका पैसा क्या ये अफ़सर लोग जेब से अदा करेंगे ? वह भी तो रेडक्रास-फंड से जाएगा। यह कमाई तो यूं ही खर्च होगी। हम लोगों पर क्या खर्च होना है ?

विवाद चलता रहता है, चलता रहता है !

गुप्ता शायद ठीक ही कहता है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को तो इन बातों का ज्ञान नहीं। प्रत्येक व्यक्ति कैसे ये रहस्य की बातें समझ सकता है। इसलिए रेडक्रास की लाटरी की टिकटें बिकती हैं और खूब बिकती हैं। गांव से नगर आए हुए जाट खरीदते हैं। पालिश और मालिश वाले छोकरे खरीदते हैं। भारत-पब्लिशर्ज के कर्मचारी खरीदते हैं। पार्टी-कामरेड खरीदते हैं। दातुन वालियों के आलसी पति खरीदते हैं। और तो और भाई ध्यानसिंह ने भी एक टिकट खरीदा है और जब से उसने एक टिकट खरीदा है, उसने पाठों की गिनती में काफी वृद्धि कर दी है। वह प्रतिदिन बीस पाठ जप जी साहब और पाँच सुखमणि साहब के अधिक करने लगा है। यदि उसकी लाटरी आ जाए......यदि उसकी लाटरी आ जाए......

वह कुछ नहीं सोचता, कुछ नहीं सोचता, "गुरु कभी तो कृपा करेगा !"—और उसके कानों में ऐलानची की आवाज रस घोलती रहती है, "रुपये लेने हैं तो मेरे पास आ जाओ......नोटों की आवश्यकता है तो इधर आ जाओ......आ जाओ......आ जाओ......आ जाओ......रेडक्रास का काम है। तुम्हारा अपना काम है। टिकट एक रुपये का, इनाम दस हजार रुपये के......पूरा नाम, पता लिखवाओ, साफ़-साफ़......ताकि हमें नोट देते समय कष्ट न हो, पूरे दस दिन रह गये हैं, भाग्य परखो भाग्य ! धन गिन-गिन कर लो !"

पर अभी तो वह खाना खाने और आराम करने गया है। अभी वह दो घंटे और वापस नहीं आयेगा। अभी तो शाम दूर है, बहुत दूर है!

स्वर्गीय गजराजसिंह की बड़ी हवेली, जिनके भीतर रिहायशी मकान, किरायेदारों की विभिन्न दुकानें, गोदाम और दफ्तर हैं, चुपचाप धूप और धूल में नहाई खड़ी है। बड़े दरवाज़े से प्रविष्ट होते ही दायें हाथ किताबों की बड़ी दुकान और बायें हाथ सरदारनी चन्द्रकौर की सीढ़ियाँ हैं। इस समय वहाँ बिल्कुल खामोशी है। दुकान का दरवाजा आधा खुला है। भीतर पंखे जोरों से चल रहे हैं। सीढ़ियाँ ऊँची हैं और सीढ़ियों का दरवाजा बन्द है। बड़ी ड्योढ़ी ठंडी है। धूप भीतर कुल नहीं आती। इसीलिए तो सीढ़ियों के पास वाले चबूतरे पर छः-सात अर्ध-नग्न दातुन वालियाँ और नीचे ड्योढ़ी के फर्श पर दो तीन पुरुष सो रहे हैं। बांहों का तकिया बनाये हुए, वे संसार से अनजान स्वप्न-मग्न हैं—दातुनों के गट्ठे बाहर रखे हैं। स्त्रियों की मैली धोतियाँ और चोलियाँ स्थान स्थान से फटी हुई हैं और वे सो रही हैं। इसलिए अपनी नग्नता से असावधान हैं। उनके मुर्झाए हुए, अर्ध बुभुक्षित चेहरे, नींद और थकान से और काले पड़ गये हैं। फटी धोती से एक बूढ़ी का काला बूढ़ा झुर्रियों भरा पेट झाँक रहा है। उसके पेट पर भी नीले, मटमैले अक्षर, तसवीरें और न जाने क्या-क्या खुदा है। एक नवयुवती की धोती बिल्कुल खुल गई है। केवल एक किनारा टाँगों और पेट को ढके हुए है। उसकी मुर्झाई हुई काली छातियाँ ढलक गई हैं।

इस समय यदि बूढ़ी चन्द्रकौर ऊपर से उतर आये तो उसकी ख़ैर नहीं! बिल्कुल खैर नहीं। वह आते ही ऊँचे-ऊँचे गालियाँ देनी प्रारम्भ कर देगी। दातुनों की गठरी से एक छड़ी उठाकर उसे पीटना आरम्भ कर देगी। "हरामज़ादियाँ, कुत्तियाँ, भाग जाओ। तुम्हारे बाप की जगह है? भागो, उठाओ अपने गट्ठे। बाहर निकालो!" और वह ठोकरों, गालियों और धमकियों से सब स्त्रियों और पुरुषों को

गठरियाँ सहित बाहर धूप और धूल और गर्मी में निकाल फेंकेगी ! ये कैसे सम्भव हैं कि धूप और गर्मी और लू के बेटे-बेटियाँ, ठंडी छाया-मय ज़िन्दगी से अपना भाग लें। जिस स्थान की कोई वस्तु है, उसे वहाँ ही रहने देना चाहिए। इसीलिए बूढ़ी चन्द्रकौर उन्हें उनके अपने वाता-वरण में वापिस भेज देगी।

परन्तु बूढ़ी चन्द्रकौर तो अभी ऊपर ही है और लू, गर्मी और धूल के बेटे-बेटियाँ सो रहे हैं। संसार और जनता से अनजान अपने अर्ध-नग्न अर्ध-बुभुक्षित, कुरूप, विकृत शरीरों से बेपरवाह सो रहे हैं।

नीचे फ़र्श पर जो तीन आदमी हैं, उनमें से एक की आयु पचास वर्ष है, परन्तु वह इतना बूढ़ा दिखाई देता है कि देखने वाले उसे नब्बे से कम का नहीं बताते। मुंडारपा, सब दातुन वालों का चौधरी है। जब वह मध्य प्रदेश के भील-प्रदेश में रहता था और जब डाकुओं और पुलिस की अराजकता फैल जाने के बाद वहाँ से सपरिवार भागने की तैयारी करने लगा और जब उसने देखा कि जंगल के कानून की जगह नगर के उस क़ानून ने ले ली है, जो जंगल के क़ानून से भी बुरा है, तो उसने अपनी इच्छा सारे कबीले को इकट्ठा करके बताई। उत्तर, दूर, दूर उत्तर की ओर एक ऐसा देश है, जहाँ धन-ही-धन है। लम्बे, गोरे सुन्दर आदमी हैं, स्त्रियाँ हीरे और जवाहरात पहनती हैं—उसने अपने पंजाब के सौन्दर्य, पंजाब की उपजाऊ भूमि और पंजाब की दौलत के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। हाँ, तो उत्तर बहुत दूर उत्तर में जो देश है, वहाँ हर प्रकार का धंधा मिलता है। हम सब चलें, तो बिरादरी भी रहेगी और फिर जब हम बहुत धन कमा लेंगे तो इधर लौट आयेंगे और आकर खेती के लिए ज़मीन ले लेंगे।

तो मुंडारपा के साथ उसके कबीले के बारह पुरुष, बीस स्त्रियाँ और सौ के लगभग बच्चे गाड़ियों पर चढ़ते, उतरते, दिन-रात एक करते, उत्तर बहुत दूर उत्तर के इस देश में आ पहुँचे। जहाँ अब वे प्रतिदिन सुबह के समय बाहर दूर जाकर कीकरों से दातुन काटते हैं।

काँटे और पत्ते साफ करने के बाद उन्हें प्रयोग करने के योग्य बनाते हैं और शाम के समय चौक घंटाधर के गोल चक्कर की पटरी पर बैठकर बेचते हैं। "पैंशे के दो दो······पैंशे के दो दो—दातुन दातुन······"

मुंडारपा के साथ उसका सबसे छोटा भाई गुबिया और रिश्ते से उसका भतीजा घेनू भी सो रहे हैं। गुबिया सदा बीमार-सा-पतला सा नवयुवक है। उसके काले चेहरे पर बड़ी-बड़ी आँखें बहुत डरावनी लगती हैं। वह कुछ नहीं करता। दातुन काटने भी नहीं जाता और बैठ कर बेचता भी नहीं। उसके खाने, उसकी चाय और उसकी बीड़ियों का दायित्व उसके भाई मुंडारपा पर ही है। वह सारा दिन या तो सोया रहता है, या गोल चक्कर, में तनिक पीछे हटकर पंडित नेहरू की तस्वीर वाले बोर्ड से सहारा लगाए बैठा रहता है। उससे सभी डरते हैं। वह अपनी लाठी के विषय में बहुत स्वच्छन्द है। उसकी तनिक सी मूर्खता के कारण इन सब पर भय की मनहूस परछाई पड़ सकती है। एक बार ट्रैफ़िक कान्सटेबल से यूँ ही गर्म होने पर उसने लाठी उठा ली थी और इन सबको चौकी पर जाना पड़ा था, जहाँ मुंडारपा की हज़ार मिन्नतों के बाद और एक-एक पैसा इकट्ठे किये हुए दस रुपयों की रिश्वत के बाद इनकी जान बची थी।

घेनू अलबत्ता परिश्रमी है। सुबह चार बजे उठकर दोराहा की ओर जाने वाली गाड़ी पर चढ़ता है। टिकट केवल तीन आने है और यदि टिकट न भी ले तो कोई नहीं पूछता। गेट पर खड़े बाबू तो दातुन की तीन-चार छड़ियाँ लेकर ही बाहर निकाल देते हैं। शहर से तीसरे स्टेशन उतर कर (उसे स्टेशन का नाम नहीं आता) वह जंगल में पहुँच जाता है। जंगल सरकारी है। इसलिए रोकने वाला कोई नहीं। तो सुबह चार बजे का गया हुआ जब वह ग्यारह बजे लौटता है, तो उसके पास कीकर की पतली लम्बी टहनियों के दो गट्ठे होते हैं। वह आराम करता है तो उसकी पत्नी मदनपी बैठ कर दातुन काटती है। साफ़ करती है और शाम होते-होते उनकी दुकानदारी तैयार हो जाती है।

मदनपी अपने नन्हें को छाती से चिपटाए चक्कर की पटरी पर एक ओर बैठ जाती है, और घेनू दूसरी ओर—और फिर

"पैसे के दो दो·· पैसे के दो दो···दातुन, दातुन···!"

घेनू जानता है कि मदनपी के ग्राहक अधिक आते हैं। वह यह भी जानता है कि क्यों। परन्तु वह कुछ नहीं कहता। "यह तो संसार ही ऐसा है, शाला !" वह कहता है। मदनपी जब तक जवान है, उसके पास दातुन ख़रीदने वाले अधिक आयेंगे। वे कुछ छीन कर तो ले जाते ही नहीं। यदि भूखी दृष्टि से देखते हैं, तो देखने दो। अपना क्या बिगड़ता है ? क्या बिगड़ता है अपना, क्यों मदनपी ?"

पैसे के दो दो···पैसे के दो दो · दातुन...दातुन !"

परन्तु इस समय आवाजें ख़ामोश हैं, परन्तु दातुन बेचने वाले, लू, गर्मी और धूल की संतान—थकान से निढाल स्वर्गीय गजराजसिंह की हवेली की डयोढ़ी में सोये हुए हैं। दातुन ख़रीदने वाले, चमक, ठंडक और धन के पुत्र, अपने-अपने घरों, दुकानों या दफ़्तरों में हैं। वही जीवन है। एक जैसा, प्रतिदिन की भाँति, उसमें कोई परिवर्तन नहीं, कोई नवीनता नहीं—कोई कथा नहीं, कोई कहानी नहीं—केवल वास्तविकता है, नग्न घिनौनी वास्तविकता, जिसमें किसी को कोई रुचि नहीं हो सकती।

ऊपर चबूतरे पर सीढ़ियों के बिल्कुल पास जिस नौजवान-स्त्री की धोती खुली हुई है और जिसकी नौजवान परन्तु मुर्झाई हुई छातियाँ फ़र्श को चूम रही हैं, वह भी एक कड़ी, काली वास्तविकता है। नग्न, घिनौनी—जिसमें किसी को कोई दिलचस्पी नहीं और जिसमें सबको दिलचस्पी है।

रमायनी मुंडारपा की नवासी है। उन्नीस वर्ष पूर्व मध्य प्रदेश के उसी वन में जब उसका जन्म हुआ था तो मुंडारपा ने हरिण की चर्बी के दीपक जलाये थे। भीलों में राजपूतों का-सा मिथ्या गर्व नहीं, जिसके कारण उन्हें लड़कियों के जन्म की खुशी न हो। वे तो लड़कियों को लड़कों से अधिक महत्व देते हैं। एक तो विवाह के समय

लड़की के बाप को दूल्हा से उसकी क़ीमत मिलती है। और फिर लड़की ससुराल नहीं जाती बल्कि लड़का ससुराल आकर रहने लगता है। मानो आकर उनका दास बन जाता है और लड़की के माता-पिता चाहें तो सारी आयु अपने दामाद और अपनी बेटी की कमाई पर जी सकते हैं। इसीलिए तो मुंडारणा ने उसके जन्म पर हरिण की चर्बी के दीपक जलाये थे। परन्तु उसके जन्म के दो वर्ष बाद जब उसकी माँ मर गई, और पाँच वर्ष बाद जब उसका बाप भी मर गया तो सभी ने महसूस किया कि लड़की कुलच्छनी है।

लड़की वाक़ई मनहूस थी; क्योंकि यहाँ आकर भी उसी के कारण मुंडारणा पर कई विपत्तियाँ आईं। यदि संतरी बुरी नीयत से रमापनी की कलाई न पकड़ता तो मुखिया लाठी क्यों उठाता और फिर इतने रुपये देकर, इतनी मार खाकर जो जान बची, तो क्या रमापनी की इज्ज़त रह गई? सब जानते हैं कि पीछे स्त्रियाँ अकेली थीं। वे तीन रातें थाने में रहे, तो क्या पीछे रमापनी बची रह गई। क्या उसी संतरी, उसी थाने के मुंशी और उसी मुंशी के अफ़सर के पास नहीं रही? रमापनी मनहूस है। बड़ी मनहूस है! देखो, तो साली सोई हुई है, तो भी नंगी हो रही है। साली, साली···

'साली को क्या कहते हो? क्या तुम नहीं जानते थे कि मध्य प्रदेश के क्वारे जंगलों की हरिणी, दूर बहुत दूर, उत्तर की ओर पंजाब में पनप नहीं सकती थी? क्या तुम यह नहीं जानते थे?'

परन्तु यह प्रश्न मुंडारणा से कोई नहीं पूछता और पूछे भी कौन? वह स्वयं भी तो अपने से यह प्रश्न नहीं पूछ सकता। पूछे भी तो इसका उसके पास क्या उत्तर था? और वहाँ भी तो····इतने सरदार राजपूत, इतने ज़ालिम डाकू, इतने पुलिस के संतरी और इतने जंगलों के दारोगे ····क्या रमापनी वहाँ बची रह सकती थी? और कौन इतनी साफ़ रही है? रमापनी की माँ, या नानी उसकी या उसकी नानी···? कौन रही है? पिछली पाँच शताब्दियों से तो कोई भी न रह सकी है?

"पैशे के दो दो···पैशे के दो दो···दातुन दातुन···"

अभी साँझ होगी, तो वे सब हड़बड़ाकर उठ खड़े होंगे। पहले भीतर हवेली के आँगन के एक कोने में लगे नल की तरफ़ भागेंगे। ओक से पानी पियेंगे। फिर कुछ छींटे मुँह और सिर पर मारेंगे। वापिस आकर चौक के गोल चक्कर की पटरी पर अपनी-अपनी जगह बैठ जाएंगे। उनकी पत्नियाँ, उनकी माताएं, उनकी बहनें, उनकी बेटियाँ कटे हुए तथा साफ़ किए हुए दातुनों के गट्ठे उनके सामने ला रखेंगी। स्वयं भी साथ बैठ जायेंगी। और फिर लीजिए, आप दातुन ख़रीद लीजिए। पैसे के दो-दो मिलते हैं। पुरुष से ख़रीदेंगे तो आपको दातुन अच्छे मिलेंगे। आप इकन्नी देकर बाकी पैसे वापिस लेना भी न भूलेंगे और स्त्री से लेंगे तो शायद शायद···आपकी दृष्टि रेंगती हुई उसके फटे हुए ग्रेबान में घुस जाए और काले पाषाण जैसी कठोर उठानों पर केन्द्रित हो जाये, तो आप उसके शरीर से उठती हुई दुर्गन्ध की ओर भी ध्यान नहीं देंगे। आस-पास मैले-कुचैले कीड़ों की भाँति रीं-रीं करते बच्चों को भी नहीं देखेंगे। उनके ईमानदार, ख़ामाशो, भील पुरुषों का ध्यान भी आपको नहीं आयेगा। आप रद्दी सूखे हुए दातुन लेंगे और इकन्नी देकर बक़ाया के दो पैसे भी भूल जायेंगे। इसलिए अच्छा यह है कि आप पुरुषों से दातुन मोल लीजिए····

"पैशे के दो दो, पैशे के दो दो···दातुन-दातुन !"

"ले लो, बाबू, ले लो···बड़े ताजे हैं···ले लो, पैशे के दो दो !"

"बड़ी करारी है, दोस्त···यह तो बड़ी करारी है !"

"कैसे दिये हैं ?"

"पैशे के दो-दो बाबू···ले लो, लो यह अच्छा दातुन है।"

"और एक आने के लें तो ?"

"लीव इट यार ! देखा नहीं, कितनी है। आई हेट योर स्टेंडर्ड !"

"नो, डीयर कपूर, कान्ट यू सी हर चार्म ? शी इज सो यंग एंड हेल्दी !" गुबिया पीछे बैठा हुआ अस्वस्थ परन्तु चमकती हुई आँखों से

देखता है। एक क्षण के लिए उसके चेहरे पर एक रंग आता है, फिर वह मुख दूसरी ओर कर लेता है। वह देखना नहीं चाहता, उसे उबकाई आ जाती है।

'बुरी क्या है, अगर इक रात उसके साथ कट जाए!'

'साले सुबह डिट्टोल मँगवाकर सारे घर में छिड़कनी पड़ेगी और ···एंटीसेप्टिक साबुन···''

"ले लो, बाबू, ले लो, पैसे के दो-दो!"

परन्तु अभी तो साँझ नहीं हुई। अभी तो दोपहर का आधा बजा है। शायद तीन बज गये हैं। घंटाघर की घड़ियाँ तो चारों ग़लत हैं। दो सुइयों पर कबूतर बैठे भी दिखाई दे रहे हैं। ये सुइयाँ चलें तो कैसे? शीशे टूट गये हैं। सुइयों पर सारा दिन कबूतर बैठे रहते हैं और घंटा घर की १८८८ ई० सैक घड़ी को ठीक करने के लिए मिस्त्री दिल्ली से मंगवाना पड़ता है। इसलिए साढ़े तीन होने के विषय में विश्वास-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

दोपहर रेंग रही है। रेंग कर गली के मोड़ तक पहुँच गई है। टूटी हुई कमर वाली कुतिया में अब चीखने की भी शक्ति शेष नहीं रही। घंटाघर की सीढ़ियों पर सोये एक-दो डोगरी की नींद उचाट हो गई है। वह उठकर बैठ गया है और अपनी छड़ी से अपनी पीठ की खुजली दूर करने की चेष्टा कर रहा है। अभी वह उठकर जैलघर के भीतर शौचालय में जायेगा। वहाँ ही बाहर नल पर मुँह-हाथ धोयेगा। 'एक-दो डोगरी'·······'एक-दो डोगरी' का जप करते हुए चौक घंटाघर का निरीक्षण करेगा। उस समय अधिक व्यक्ति जगतसिंह चाय वाले की दुकान पर होते हैं। शहर आये हुए ग्रामीणों के साइकल बाहर पड़े रहते हैं और वे भीतर बैठे चाय, लस्सी पीते रहते हैं। अब उनके वापस जाने का समय हो गया है। उनके पास शहर से खरीदा हुआ सौदा है। बेचे हुए अनाज, सब्जी या चमड़े की रक़म है। इसलिए सबसे पहले एक-दो डोगरी वहाँ जायेगा। किसी सिग्रेट सुलगाते जाट

से मंगाकर सिग्रेट पियेगा और फिर एक-दो डोगरी का दिन शुरू है··· निचली सीढ़ियों पर कृष्ण और राजू भी उठ बैठे हैं। कृष्ण एक टाँग के सहारे फुदकता हुआ राजू के लिए पानी लेने जा रहा है। वह स्वयं पानी पियेगा, राजू को पिलायेगा। शायद राजू का ज्वर आज ठीक हो जाये। यदि न हुआ तो देशू उसे अपने साथ अपनी कोठरी में ले जायेगा··· ठीक हो जाये .....ठीक हो जायेगा...

भाई थानसिंह होशियारी से उठकर बैठ गया है। गुटका उसके हाथों में है। साथ पड़े सूत के धागे पर आज ग्रंथियों की गिनती थोड़ी है। भाई थानसिंह ने बहुत कम पाठ किये हैं। वह अभी अपनी कमी पूरी कर लेगा—पैन और टार्च मरम्मत की दुकानें अभी उसी तरह खामोश हैं। सरहद्दी उसी भाँति सोया हुआ है। इस सारी अवधि के बीच में उसकी दुकान पर कोई ग्राहक नहीं आया है—लैटर-बक्स ने अपना मुँह खोल दिया है। डाकिया चाबी लगाकर सारी डाक निकाल रहा है। इसका अर्थ है कि समय पौने चार का है। बड़े लिफ़ाफ़े, छोटे लिफ़ाफ़े पोस्टकार्ड···डाकिया का थैला भर गया है। लैटर-बक्स मुँह खोलकर सारे रहस्य, सारे गुप्त रहस्य उसी रूप में उगल रहा है। वह ब्लेक मेलर नहीं है। आज शायद भगवान् के नाम किसी बच्चे का पत्र नहीं डाला गया है। सम्भव है, हो भी। यह बात न लैटर बक्स जानता है, न डाकिया। क्योंकि दोनों ईमानदार हैं। आपस में उनकी पक्की मैत्री है, विश्वास है।

ट्रक उसी प्रकार चल रहे हैं। ज्ञानीराम अपनी वरदी पहने धीरे-धीरे चलता आ रहा है। शायद वह आभूषण बेचकर आया है। आभूषण बेचने के बाद दवाइयाँ खरीदकर भी हस्पताल पहुँचा आया है। इसलिए वह चुप है। उसका चेहरा काला है। सामने दो लड़के एक ही साइकिल पर चढ़े आ रहे हैं। वे सन्तरी को देखकर जल्दी-जल्दी उतर पड़ते हैं परन्तु ज्ञानीराम उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। उसका ध्यान हस्पताल में अपनी पत्नी कौशल्या के पास है, जिसके पाँचवाँ बच्चा हुआ

है और जिसके रक्त में लाल कण बहुत कम हैं और जो बहुधा बीमार रहती है—मदन अभी नहीं आया। अभी बहुत धूप है और इस समय अखबार तो बिकते नहीं। पत्रिकाएँ खरीदने के लिए इस धूप में कौन आता है ? शाम को लोग बाजार आते हैं तो लगे हाथों, गाया, मनोरमा, हिन्दुस्तान, फ़िल्मफेयर फ़िल्म इंडिया, शमा बीसवीं सदी ख़रीद ले जाते हैं। इसलिए अभी मदन नहीं आया है—बाबू गौरी शंकर ने बाहर अकेला पन देखकर अभी-अभी टीन का डिब्बा बाहर नाली में उंडेला है। उसे आज बवासीर बहुत तंग कर रही है। साँझ को वह फिर सन्यासी के पास दवाई लेने जायेगा। वह जी रहा है, बरहहाल जी रहा है—अमरू कुत्ता कब का धो चुका है। खाना भी खा चुका है। एकाध घण्टा आराम भी कर चुका है और अब सुबह के झूठे बर्तन माँज रहा है। कढ़ाहियाँ और पतीले और बालटियाँ और कूंडे और न जाने क्या-क्या ! नारियल के रेशे से उन्हें रगड़ते-रगड़ते उसके हाथ घायल हो गये हैं परन्तु वह अपने कार्य में व्यस्त है। सदा की भाँति, वह आज भी अपने गाँव और अपने घर के विषय में सोच रहा है—लड्डू बिल्कुल दिखाई नहीं देता और लाला भी तीन-चार बार उसके विषय में पूछ चुका है। न जाने लड्डू कहाँ है ? न जाने साला गया कहाँ है ?

साँझ अभी नहीं हुई इसलिए पत्रकार बनने की धुन में पागल लड़का, कोमल अल्पायु लड़का अभी दयालचंद के घर नहीं पहुँचा। दयालचंद इस समय किसी नये शिकार की खोज में घूम रहे हैं। सिनेमा का शो प्रारम्भ होने वाला है। इसलिए वहाँ होंगे। स्कूलों और घरों से भागे हुए अल्पायु और कोमल लड़के इस समय दस आने की क्लास में होंगे। जीवन में प्रथम बार सिग्रेट पीने का प्रयत्न कर रहे होंगे। दयालचंद जी बहुत बुद्धिमान् हैं, बड़े कांइयाँ हैं.......

पिशावर होटल पर रौनक बढ़ गई है। रेडियोग्राम जोर-शोर से बज रहा है। कई ग्राहक बैठे चाय पी रहे है। मोटाराम सावधान हैं। बैरे अब सामान्य तीव्रता से दौड़ रहे हैं। पृथा साहब ऊपर वाले कमरे

में चले गये हैं। उनके दो मित्र भी आ गये हैं। बीयर और मंगवाई गई है। एक रोस्ट मुर्गे का आर्डर मिला है। पृथा साहब बड़े बुद्धिमान् हैं, बड़े कांइयाँ हैं......

रेडक्रास लाटरी के कैम्प में ऐलची आ गया है, "नोटों की जरूरत है तो मेरे पास आ जाओ......गिन-गिन कर नोट ले लो। एक टिकट में दो मज़े......नाले ताँ रेडक्रास का फ़ायदा करो, नाले इनाम लो....." उसकी भारी सुस्त आवाज धीरे-धीरे बोझिल वातावरण को चीर रही है।

उलटी लटकी चारपाइयों ने पंडित नेहरू का चेहरा छिपा लिया है और भारत-पब्लिशर्ज़ की बाहर वाली दुकान पर बैठा गुरुचरनसिंह पेच-ताव खा रहा है, उंगलियाँ तोड़-मरोड़ रहा है। उसका वश नहीं चलता, अन्यथा इन सब दातुन वालों को फाँसी पर चढ़ा दे। उसका नेहरू-पूजक हृदय इस समय जल रहा है।

डयोढ़ी में भीतर अब पुरुष उठकर चले गये हैं। केवल स्त्रियाँ अभी चबूतरे पर सोई हुई हैं। जगदीश दुकान से बाहर निकला है। किच-किचा-सा दुर्बल जगदीश। उसकी आँखें अर्धनग्न रमापनी को देखकर चमक उठी हैं। उसके होंठों से राल टपकने लगी है। वह दो पग और आगे आ गया है और आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा है। दुर्बल, किच-किचा-सा अर्धमृत जगदीश, जिसे शायद रमापनी मिल जाये तो वह हर्ष और भय से मर ही जाए, इस समय राल टपका रहा है।

वह सर्प जिसे दिन कहते हैं और जो केंचुली बदलता है तो दोपहर से शाम हो जाती है अब धीरे-धीरे केंचुली उतार रहा है। शाम हो रही है, शाम—धूल, लू और धूप का वह मेघ, जो मेघ नहीं है, उसकी प्रेतात्मा है, उसका भूत है, अब धीरे-धीरे पश्चिम की ओर रेंग रहा है—शाम होगी, शाम !

शाम

शाम हुई है।

सांवली, सलौनी, नमकीन, सुन्दर लावण्ययुक्त साँझ की देवी आई है। वातावरण के मुख से धूल तथा गुबार धुल गया है। धूप की किरणें तिरछी पड़ने लगी हैं। पिशावर होटल पर रिकार्ड बजने लगे हैं। चाय की सभी दुकानों पर रेडियो का पाँच का घंटा बजने की ध्वनि आई है और जैसे एकदम चौक घंटाघर की अर्धमृत और थकान से चूर-चूर जीवन में नया उत्साह और नई उमंग उत्पन्न हो गई है। हर तरफ़ से एक मीठा लुभावना शोर फैलने लगा है। चौक घंटाघर गर्मी और लू और धूल की झपकी से आँखें मलते हुए उठ बैठा है।

वाक़ई शाम हुई है।

दातुन वालियों की चीख-पुकार आरम्भ होने को है। रेडक्रास लाटरी वाला अपने लाऊडस्पीकर पर गला फाड़ फाड़कर चिल्लाने लगा है। वातावरण में भी उसकी आवाज उभरती है तो कभी रोजा और पिशावर होटल से आती हुई फ़िल्मी गीतों की धुनें इस आवाज को डुबो देती हैं। बड़ी चहल-पहल है। बड़ा अच्छा वातावरण है। पिशावर होटल के बाहर एक बैरा पानी का छिड़काव करने लगा है। वह आती-जाती स्त्रियों की ओर आँख दबा कर देखता है और फिर गिलास भर कर उनके समीप ही पानी फेंकता है। फिर होठों-ही-होठों में मुस्कराता है और अपने साथ खड़े दूसरे बैरे की ओर देखकर जोर से हँसता है। "हाय जानी......!"

पिशावर होटल के बाहर छिड़काव होते देखकर साथ की दुकानों

पर फलवालों को भी छिड़काव करने का विचार हो आया है। जली हुई धूल से अटी सड़कों पर पानी पड़ने से मिट्टी की सोंधी-सोंधी सुगंधि उठनी प्रारम्भ हो गई है। बच्चा जब माँ का दूध पीते-पीते झटक कर मुँह इधर-उधर मारने लगता है तो उसे ऐसी ही सुगन्धि आती है। धरती माँ है। मिट्टी माँ है। माँ के शरीर की सुगन्धि से सुप्त-प्रेम जाग उठता है। बचपन की यादें उभरने लगती हैं।

फलों की दो दुकानों को छोड़कर एक क्रॉकरी की दुकान मिलती है। दुकान छोटी-सी है, परन्तु उसमें शीशे की बनी हुई संसार-भर की कीमती परन्तु बेकार वस्तुएँ मिलती है। प्रायः भीड़ रहती है। दुकान का मालिक, नौजवान लड़का, ग्राहकों को भी अच्छा कमीशन काट देता है इसलिए ग्राहकों की भीड़ रहती है। बिक्री अच्छी हो जाती है। लड़का बनिया है परन्तु एक धनी-परिवार से सम्बन्ध रखता है। यह दुकान तो उसके लाला जी ने यूँही शुग़ल के रूप में उसे खोल दी है। लाला जी की अपनी बहुत बड़ी एजेन्सी है। सारे पंजाब के लिए मशीनों, साइकिलों और पंखों की एक प्रसिद्ध मार्का की बहुत बड़ी ऐजेन्सी है। लाखों का कारोबार है। हजारों हाथ से रोजाना गुजरते हैं। यह दुकान तो शुग़ल के रूप में लड़के को खोल दी है!

लाला जी का भी एक शुग़ल है। संसार का सबसे पुराना और जाना-पहचाना शुग़ल। लाला जी का भार साढ़े चार मन है। पेट दो फुट सामने को निकला हुआ है। बच्चों का-सा गोल-मोल चेहरा है। पेट बहुत बढ़ा हुआ है, इसलिए पतलून नहीं पहनते। कमीज इतनी बड़ी पहनते हैं कि पेट के हिमालय पर्वत को ढँक कर नीचे घाटी तक पहुँच जाये। उसकी मुख-मुद्रा को देखते हुए लाला जी के शुग़ल पर विश्वास करने को मन नहीं मानता परन्तु वास्तविकता से आँखें कब चुराई जा सकती हैं। लाला जी का शुग़ल उज्ज्वल दिन की भाँति स्पष्ट है। एक दुनिया जानती है। एक युग पहचानता है।

मिस्टर सेठ ने एक बार मिस्टर आनन्द से कहा था, " मुझे समझ

नहीं आती कि लालाजी करते कैसे होंगे ? इतना बड़ा पेट, इतना शरीर, आखिर कैसे होता होगा सब कुछ । मैं अपनी सारी पूँजी दे सकता हूँ यदि लालाजी एक बार मुझे प्रेक्टीकल डिमांस्ट्रेशन देखने का अवसर दे दें । और फिर हम सुनते हैं कि यहाँ नित्य नई रात पड़ते-पड़ते पहुँच जाती है··· कैसे करते होंगे लाला जी ?"

मिस्टर आनन्द ने मिस्टर सेठ को उत्तर दिया था, "आवश्यकता आविष्कार की जननी है, सेठ साहब ! लाला जी को आवश्यकता है । वह नये-नये ढंग आविष्कृत कर ही लेते होंगे !"

बात समाप्त हो गई थी । मिस्टर सेठ अभागे हैं कि वह पुलिस के उन चार सिपाहियों, एक हवलदार और एक इन्सपैक्टर के साथ नहीं थे जिन्होंने लाला जी की प्रेक्टीकल डिमांस्ट्रेशन देखी । चौदह-पन्द्रह वर्ष की मासूम क्वारी लड़की, जिसका सारा शरीर लाला जी की एक भुजा से अधिक नहीं था, लाला जी की दुकान पर कम्पनी से चिट लेकर मशीन की ग्रांट लेने आई थी । लाला जी ने एक के बजाय दो मशीनें देने का वादा किया । लड़की शायद इससे पूर्व कौमार्य की सीमा लाँघ चुकी थी अन्यथा कभी स्वीकार न करती । बहरहाल ऐजेन्सी के ऊँचे चौबारे पर लाला जी उसे दूसरी मशीन देने ले गये तो लड़की के छोटे भाई ने जोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर दिया । फ्लाइंग स्क्वाड संयोगवश पास ही था । इंस्पेक्टर नया-नया नियुक्त हुआ था, अन्यथा लाला जी के ऐश्वर्य से शायद भयभीत हो ही जाता—लड़की माँस के उस स्तम्भ को देख कर घबरा रही थी और अभी लाला जी के नये आविष्कार का प्रयोग पूरा हुआ भी न था कि छापा पड़ गया ।

मिस्टर सेठ वाकई अभागे हैं, कि वह इस दृश्य को न देख सके । पुलिस इंस्पेक्टर नगर से स्थानांतरित हो गया । सिपाही और हवलदार भी दाएँ-बाएँ भेज दिए गये । लाला जी के लाखों गति में आ गये बचाव हो गया । मामला दबा दिया गया । परन्तु नगर में एक ऐसा स्कैंडल प्रसिद्ध हुआ कि लोगों को दस-बारह दिन और कोई विषय ही

न हाथ आया। लाला जी दस-बारह दिन दुकान पर दिखाई न दिये। यह दुकान अलबत्ता खुली रही।

"हाय हमारे लाला जी······पुलिस वालों से शत्रुता थी। एक लड़की को बहकाकर झूठा अभियोग बना दिया!" लाला जी का लड़का लोगों को कहता रहा—लोग हँसते रहे, लाला जी की आकृति और शरीर तथा यह शुग़ल! परन्तु कौन जाने······

परन्तु कौन जाने यह लड़की दस हज़ार लड़कियों में से एक थी, जो गत आठ वर्षों से ऐजेन्सी पर सिलाई सीखने, किस्तों पर मशीन ख़रीदने और लाला जी की वासना तुष्ट करने के लिए आती रही।

क्रांकरी की दुकान खूब चलती है; क्योंकि लड़का लाला जी के ही पद-चिन्हों पर चल रहा है। अभी बच्चा है, कुछ दाव-पेंच नहीं सीख सका। इसलिए दो बातें करने या फिर शरीर को हाथ लगा लेने पर ही संतोष करता है। चाय के सेट का क्या है, पन्द्रह रुपये का सैट, आठ रुपये में आता है और आठ रुपये की तो लाला जी दुकान पर बैठे-बैठे पेड़ों की लस्सी पी जाते हैं।

सड़क पार करके लौट आइये। जगतसिंह की चाय की दुकान है। साथ एक और चाय का स्टाल है, जो इसी के पद-चिन्हों पर चल रहा है, परन्तु जो सफल नहीं हुआ। उसके साथ सीढ़ियाँ चढ़ती हैं, ऊपर एक चौबारा है, एक बालाख़ाना है। पहली दृष्टि में यह स्थान लगभग पाँच राजनैतिक और अर्धराजनैतिक तथा अराजनैतिक दलों का कार्यालय है। वास्तव में बेकार, अर्धराजनैतिज्ञ बेघर नवयुवकों के दिन को बैठ कर बातें करने, ताश खेलने, अमरीकन दूतावास से आये हुए लिट्रेचर पढ़ने और रात को सोने का अड्डा है।

ये गुरदयालसिंह हैं। जन्म से और घराने से सिक्ख हैं। अब भी जब कभी गाँव जाते हैं तो सिर पर पगड़ी बाँध लेते हैं। दाढ़ी मूँछ कटी है। सिर के बाल कटवाते हैं, परन्तु फिर भी इतने लम्बे-लम्बे ज़रूर हैं कि पगड़ी बाँधने पर चेहरा विचित्र प्रतीत न हो। जब चौबारे की

सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आ खड़े होते हैं तो देखने में अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के मुस्लमान इण्टलेक्चुअल दिखाई देते हैं। गोरा रंग, जाट खून, लम्बा क़द और उस पर काली दाढ़ी, गेरुवें खद्दर का कुर्त्ता और पाजामा, पाँव में पिशावरी चप्पल !

ये गुरदयालसिंह हैं।

× × ×

"आप नेहरू सरकार को गालियाँ देते हैं, पंजाब सरकार की मिट्टी पलीत करते हैं। कभी आपने सोचा भी है कि एडमिन्स्ट्रेशन चलाना कितना मुश्किल है। आप तो बस बातें करना जानते हैं......" गुरदयालसिंह कहते जायेंगे "......मैं कहता हूँ कम्युनिस्ट कौम नष्ट हैं, उन्हें रूस से आदेश प्राप्त होते हैं। रूस से पैसा आता है। हमारी सरकार के पास स्पष्ट प्रमाण हैं। केरल की कम्युनिस्ट सरकार खु्श्चेव के इशारे पर चलती है....." गुरदयालसिंह पक्के ऐन्टी-कम्युनिस्ट हैं परन्तु केवल कुछ दिनों के लिए। जब तक अमरीकन दूतावास की पुस्तकें जीवित हैं, उन पुस्तकों से कमाया हुआ पैसा जीवित है, तब तक वह ऐन्टी-कम्युनिस्ट हैं और कांग्रेसी हैं। समय आने पर सोशलिस्ट भी हो जाते हैं। पार्टी का क्या है ? लेबल का क्या है ? लेबल न भी हो तो भी व्यक्ति का व्यक्तित्व जीवित रहता है। लोग लेबल नहीं देखते, व्यक्तित्व देखते हैं। यदि पंडित नेहरू कांग्रेस का टिकट न भी लें, तो क्या लोग उन्हें वोट नहीं देंगे ?" गुरदयालसिंह बहुधा यह बात कहा करते हैं—यह चौबारा गत आठ वर्षों से उनका दफ़्तर है। वह कोई काम नहीं करते। सभी एम० एल० ए० उनके परिचित हैं। सभी प्रादेशिक मन्त्री उन्हें पहचानते हैं। सरकारी अफ़सर भी छोटी-छोटी सिफ़ारिशें मान लेते हैं। छोटा-मोटा काम कर देते है। न जाने कब गुरदयालसिंह की आवश्यकता पड़ जाए इसलिए वे सरदार गुरदयालसिंह की छोटी-छोटी सिफ़ारशें मान कर काम कर देते हैं। किसी टीचर को अपनी बदली की आवश्यकता हो, किसी मेट्रिक पास लड़के को अस्थायी स्थान की

इच्छा हो, किसी विधवा को ग्रांट की अभिलाषा हो, किसी शहर के व्यक्ति ने लाइसेंस बनवाना हो, गरज—कोई छोटा-मोटा काम हो, गुरदयालसिंह तैयार हैं। रोटी चलती ही है।

चरन राम हैं, जो तुतलाते हैं, अपने को तरन राम कहते हैं। एक अच्छे घराने की आँखों की ज्योति हैं। पत्र भी निकालते रहे हैं। यह केवल दिन के समय ही यहाँ पधारते हैं। नगर के सम्मानित लोगों की सहायता से कन्सर्ट करवाते हैं, जिसकी आय प्रधानमन्त्री के फंड में या मुख्य मन्त्री के बाढ़-सहायता-कोष में जमा करवाने की घोषणा होती है। 'तरन राम' बड़े उत्साह से काम करते हैं। ऐण्टरटेनमैंट टैक्स भी नहीं होता। टिकट भी बिक जाते हैं। कन्सर्ट भी अच्छा हो जाता है। परन्तु न जाने क्या बात है, कन्सर्ट में सदा घाटा रहता है। 'तरन राम' जी को अपनी जेब से कुछ-न-कुछ डालना पड़ जाता है। फंड में एक पैसा भी नहीं जा सकता। हताश हो, वह बैठ रहते हैं। दो-चार मास,वह और उनके मित्र चुपचाप बैठे रहते हैं। चाय उड़ती है। दो-चार मास खर्च निकलता है। फिर नये कन्सर्ट की तैयारी होने लगती है।

चरनराम जी के राजनीतिक विश्वास शून्य के बराबर हैं। उनका झुकाव अलबत्ता कांग्रेस की ओर है। कभी-कभी सोशलिस्टों की हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। कम्युनिस्टों से उन्हें जन्म का बैर है। इस चौबारे में रहने वाला कोई व्यक्ति भी कम्युनिस्टों से सहानुभूति नहीं रख सकता। यह वाशिंगटन का नियम है—चरनराम जी कई बरसाती संस्थाओं के सदस्य, मन्त्री, प्रधान, बहुत कुछ हैं। इंडो-अमरीकन फ्रेंडशिप सोसाइटी—इंडो-बरमीज़ कलचरल आरगनाइजेशन—इंडो अरब यूथ लीग—अफ्रोएशियन फ्री थिंकर्ज़ ऐसोसिएशन—जब भी कोई बड़ा विदेशी व्यक्ति दौरे पर आता हुआ पंजाब में आता है, एक नई संस्था की स्थापना होती है। फंड इकट्ठा होता है। दो-चार सभाएँ होती हैं जिसमें उस देश के प्रतिनिधि भी भाग लेते हैं। चरनराम जी खुश-खुश इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूमते-फिरते दिखाई देते हैं। सभाएँ बहुधा सफल होती

हैं, पंडाल में तिल धरने को भी स्थान नहीं होता—दौरा समाप्त होता है और वह संस्था भी समाप्त हो जाती है, केवल उसका नाम रह जाता है। चरनराम जी नगर के सांस्कृतिक जीवन की आत्मा हैं। पंजाब की संस्कृति का जीवन हैं। इसीलिए उनके राजनैतिक-विश्वास शून्य के बराबर हैं। कम्युनिस्टों से अलबत्ता उन्हें जन्म का बैर है।

अनोखसिंह हैं—खूब हैं—बहुत खूब है—गुरदयालसिंह और चरनराम के चरित्रों का सम्मिलित निचोड़। अनोखसिंह सारी आयु कुछ नहीं कमा सके। बचपन में माता-पिता ने विवाह कर दिया। स्वयं बच्चे थे। पत्नी अलबत्ता जवान थी। इसलिए घर छोड़कर ससुराल रहने लगे। मेट्रिक पास किया तो शहर आकर कालेज में प्रविष्ट हो गये। तीस वर्षों में एम० ए० भी पास न कर सके तो पढ़ाई छोड़ दी। ससुर की एक इकलौती लड़की थी। शहर में मकान ले लिया और पति-पत्नी इकट्ठे रहने लगे। गेहूँ, घी, सब्जी गाँव से आ जाती। निर्वाह होता रहता, परन्तु जेब-खर्च के लिए नक़द पैसा तो पत्नी से माँगना ही पड़ता—शहर आकर नवयुवक छात्रों से मैत्री हुई। सब स्वच्छन्द थे, सब निश्चिन्त थे, सब विलासी थे। अनोखसिंह ने सिग्रेट शुरू की तो पत्नी ने बुरा न मनाया परन्तु जब कन्सर्ट और सभाओं के बहाने रात-रात भर घर से अनुपस्थित रहने लगे तो झगड़ा हुआ। झगड़ा बढ़ा तो गाँव से ससुर भी पधारे। अनोखसिंह का आहत और दबा हुआ आत्म-सम्मान शहर आकर जागृत हो गया था, पत्नी और ससुर की हठ के साथ टकरा गया।

"माँ ने पुत्र दा नाँ रखया ए, अनोखसिंह······माँ दा अनोखा पुत्र!" उसका ससुर अपनी लाँगर पेट पर चढ़ाते हुए कहता। पत्नी आँखें दिखाती। घर बैठना असम्भव हो गया और कहाँ वे दिन थे कि मित्र भी सारा-सारा दिन घर बैठे रहते थे। चाय बनती रहती थी और ······और······"लानत है ऐसे जीवन पर!" एक दिन उसने सोचा, "मैं इन सबको छोड़ कर चला जाऊँगा।"

और वह अपने एक मित्र के घर आया। कुछ कपड़े माँगे। कुछ

रुपये उधार लिए और रात की गाड़ी से चढ़कर शहर छोड़ गया। एक दिन व्यतीत हुआ। जब पंछी उड़ गया तो ससुर और पत्नी को होश आया। ढूंढ पड़ी। अनोखसिंह के उस मित्र को धमकियाँ दी गईं।

"कहाँ है, तुम्हारा मित्र ? कहाँ मार डाला है उसे ? जल्दी बताओ, पुलिस की रिपोर्ट में तुम्हारा नाम भी आयेगा !" उसकी पत्नी ने सिर पटक-पटक लहू-लुहान कर लिया।

अनोखसिंह के युवा शरीर में बंद पन्द्रह वर्ष का बच्चा—जिसका पालन विवाह के दिन से ही रुक गया, बच्चा ही रहा। आखिर पन्द्रह-बीस रुपये से कब तक निर्वाह हो सकता था और पैसा कमाना उसने सीखा ही न था। इसलिए कैद का आदी, पिंजरे से सुपरिचित पंछी खुली हवाओं को सहन न कर, तीसरे दिन ही लौट आया। प्राण में प्राण आये। पुराने मित्रों से सम्बन्ध टूटा। जीवन नये सिरे से प्रारम्भ हुआ। एक छोटी-सी परीक्षा पास की तो प्राइवेट स्कूल में खेती-बाड़ी पढ़ाने की नौकरी मिल गई। सब खुश थे।

परन्तु पन्द्रह वर्ष का मनोवैज्ञानिक शिशु भीतर कैद ही रहा। वह बढ़ न सका। उसने डूबने वाले व्यक्ति की तरह दाएँ-बाएँ हाथ मारे। स्थानीय राजनीति और प्रान्तीय राजनीति का पल्लू हाथ में आया तो बड़ा प्रसन्न हुआ। अकाली आन्दोलन का विरोधी, पंजाबी प्रान्त-आन्दोलन का विरोधी और कट्टर हिन्दू महा पंजाब आन्दोलन का समर्थक बनने से प्रसिद्धि सुलभ थी। एक सिक्ख के लिए यह कार्य और अधिक सरल था। अट्ठाईस-तीस वर्ष के उस युवा शरीर में बंदी पंद्रह वर्षीय आत्मा ने कभी एक आन्दोलन को पकड़ा, कभी दूसरे को। ख्यात हुए या कुख्यात, लोगों ने मूर्ख समझा या बुद्धिमान्, यह और बात थी। अलबत्ता उसके दिन कटने लगे। दो बच्चे हो गये तो घर बस गया।

उस जीवन का कहना क्या, जिसका प्रारम्भ छोटे-मोटे कन्सर्टों से हुआ और अन्त यह चौबाल है। अनोखसिंह जो गुरदयालसिंह के सम्मिलित चरित्रों का निचोड़ है। अब भी इसी स्थान पर दिखाई देता है।

स्कूल से एक बजे छुट्टी मिल जाती है। एक से रात के नौ बजे तक यह चौबारा ही उनका आश्रय-स्थान है।

उनके अतिरिक्त कई और हैं। कृष्णदयाल 'गुल' हैं। उपनाम धारण करने का अपराध करते हुए भी कविता नहीं करते। शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति हैं। जयप्रकाश नारायण के शिष्य हैं। लम्बी-लम्बी लटें, तेल से चुपड़ी दाढ़ी, एक कुर्ता और पायजामा, सर्दियों में उसके ऊपर जयप्रकाश की तरह जाकट—पर्याप्त गम्भीर व्यक्ति हैं, कविता मर्मज्ञ हैं, रसिक हैं।

एक चौबारा है, एक गालाखाना है, यही सम्पूर्ण संसार है, यही सम्पूर्ण सृष्टि है !

जब से भारत-पब्लिशर्ज़ की दुकान पर काम करने वाले हरीश को कमरे से बेदखल किया गया। वह यहीं सोता है। दो जोड़े कपड़ों के हैं, एक पहनता है, दूसरा धोबी के पास रहता है। जब वह तैयार होकर आता है तो यह मैला हो जाता है। सामान की आवश्यकता ही क्या है। और यह चौबारा उन सब शरणार्थियों के लिए खुला है जिन्हें साम्यवादियों ने निकाल दिया हो। जब से हरीश को चिरंजीत से मार पड़ी है और जब से उसने उच्च स्वर से उसे यह धमकी दी है कि वह बड़ा होकर उसे मार डालेगा, तब से वह उस चौबारे में आ गया है।

× × ×

सीढ़ियाँ उतर आइए। शाम भीगती जा रही है। साँवली सलौनी शाम। नमकीन और मीठे दृश्य लिए ठुमकती-ठुमकती चल रही है। हर तरफ़ गहमा-गहमी है। एक प्यारा-सा शोर है। रिक्शे वालों की घंटियाँ हैं; साड़ियाँ, ग़रारे, प्रत्येक रंग और प्रत्येक ढंग के कपड़े, हर बनावट और हर आयु के शरीर—फलवालों की दुकानों पर भीड़-सी एकत्रित है। लोग शॉपिंग करने बाहर आ गये हैं। दिन भर गर्मी से बन्द दड़बों में घुसी रहने वाली स्त्रियाँ बाहर निकल आई हैं। अपने चाहने वालों, अपने पतियों के पग-से-पग मिलाए, कंधे-से-कंधा जोड़े साथ आ रही हैं। मुर्झाए हुए, विभिन्न प्रकार की बीमारियों से मुर्झाए हुए चेहरों पर

पाऊडर और रूफ़ की मोटी-मोटी तहें जमाये हुए, ढलकती छातियों को किसी-न-किसी तरह इकट्ठा करके, नये नमूनों की ब्रासरीज़ में बन्द करके वे जवान बन गई हैं। साड़ी और ब्लाऊज़ के बीच गाँठ वाले स्थान को नग्न रखे हुए, अपने शरीरों की लालिमा और सफ़ेदी का प्रदर्शन करती हुई वे हर नवयुवक क्वारे लड़के के हृदय में हलचल-सी पैदा कर देती हैं—कौन कह सकता है कि सामने आती हुई मिसेज बावा चार बच्चों की माँ है, जिसके सबसे बड़े बच्चे की अवस्था बारह वर्ष है और इधर पागल रवीन्द्र है कि एकटक उसे घूर रहा है। वह समझता है मिसेज बावा उससे अधिक-से-अधिक दो वर्ष बड़ी है। उसकी अपनी आयु बीस वर्ष है। कोई यदि रवीन्द्र से यह कह दे कि मिसेज बावा प्रतिदिन सुबह अस्पताल के महिला-विभाग में जाकर इलैक्ट्रिक शॉक लगवाती है, ताकि उसकी नसें, जो अन्तिम बच्चे के जन्म के बाद बिल्कुल सुन्न हो गई थीं, फिर जीवित हो सकें, और वह प्यार करते समय मिस्टर बावा से अधिक नहीं तो थोड़ा मज़ा ही ले सकें—कौन कह सकता है कि मिसेज बावा के पीछे आने वाली डॉक्टर हरदत्तसिंह की पत्नी चालीस बरस की है। डॉक्टर हरदत्तसिंह की दाढ़ी सफ़ेद हो गई है। एक लड़का बी० ए० करने के बाद नृविज्ञान में डिग्री लेने के लिए अमरीका गया हुआ है और पत्नी अभी जवान है। सिर के बाल हाइड्रोजन पैरा-क्साइड से सुनहरे रंग लिए गए हैं। दूर से देखने पर चेहरा रेशम की भांति कोमल और रक्तिमतायुक्त श्वेत दिखाई देता है। बाल छत्ते के रूप में सिर पर बँधे हैं। साड़ी नायलोन की सबसे बढ़िया और कीमती कपड़े की है। पाँव में ऊँची एड़ी वाले सैंडल हैं। पास देखने पर भी पच्चीस वर्ष से अधिक की नहीं लगती और रवीन्द्र है कि अब भी उसे एकटक देखे जा रहा है। वह समझता है, स्त्री अच्छी है। हाय क्या सुन्दर वक्ष है! और बाल, वाह क्या ढंग से सँवारे हैं? गुलाब के फूलों से कपोल और हल्की लालिमा से रंगीन शहद में डूबी पंखड़ियों की तरह अधर। रवीन्द्र बेचैन है कोई उसे बतादे कि उस स्त्री के साथ आने

वाला बूढ़ा सिक्ख जैन्टिलमेन उसका बाप नहीं, पति है और पत्नी पति से केवल आठ वर्ष छोटी है, तो रवीन्द्र बिल्कुल विश्वास न करे। कोई उसे बतादे कि मिसेज हरदत्तसिंह का बड़ा लड़का उससे तीन चार वर्ष बड़ा है तो रवीन्द्र की आंखें आश्चर्य से चौड़ी हो जायें। रवीन्द्र को पिघला देने वाली जवान दृष्टि को बूढ़ी मिसेज हरदत्तसिंह ने महसूस किया है और वह मुस्कराई है। उसका मेकप सफल है। उसकी जवानी स्थायी है। दर्पण क्या वस्तु है ? स्त्री के लिए वास्तविक दर्पण तो पुरुष की पिघला देने वाली दृष्टि है। उसकी मुस्कराहट से रवीन्द्र तड़प गया है। उसकी नसों में रक्त का संचार तीव्र हो गया है। "काश यह वश में आ जाये !' वह सोच रहा है !

और इधर भोंदू जमादार की युवा लड़की शांति है। भोंदू जमादार की हो या न हो, उसकी पत्नी पारो की अवश्य है। बाईस वर्ष की अवस्था है। चार वर्ष ही जवान होने को आये, दो बच्चों की माँ बन चुकी है। आंखें भीतर को धँस गई हैं। चेहरा पीला पड़ गया है, शरीर ढलक गया है। सफ़ेद पानी आने की बीमारी ने उसे बाईस वर्ष की होते हुए भी पेंतालीस वर्ष की बना दिया है। कोई उसकी ओर नहीं देखता। वह गन्दगी की हत्थ-रेड़ी के पास बैठी अपने गले से मैले मुर्झाए हुए स्तन निकाल कर अर्धमृत बच्चे को दूध पिलाती रहती है और कोई उसकी तरफ़ ध्यान नहीं देता—"जो स्त्री नंगी है, उसे देखने का अवकाश किसी के पास नहीं। परन्तु जो स्त्री नंगी नहीं है, जिसकी छातियाँ पन्द्रह रुपये की अमरीकन आसरी में छुपी हैं, उसे देखने का लालच सभी को है।" शान्ति भी विचित्र लड़की है। माँ ने हज़ार बार चाहा कि वह भी उसकी भांति कोई युवा-लाला फाँस ले। रंग था, रूप था, शरीर था, आयु थी, क्या-कुछ नहीं था। सैंकड़ों रुपये मासिक देने को तैयार थे लोग, परन्तु शांति ने स्वीकार न किया। उसने अपने प्रेमी वजीरा से विवाह कर लिया और अब देख लीजिए चार वर्षों में क्या दशा हो गई है। दो बच्चे हैं। वजीरा प्रायः बीमार रहता है। शराब

भी पीता है। शांति को पीटता भी है, परन्तु वैवाहिक-जीवन स्थिर है। शांति सारा दिन काम करती है। चालीस रुपये मासिक कमेटी से वेतन मिलता है। दस-बारह घर भी कमा लेती है और बाईस बरस की शांति पैंतालीस बरस से कम की दिखाई नहीं देती। यद्यपि पैंतालीस वर्ष की मिसेज हरदत्तसिंह को देखकर बीस वर्षीय रवीन्द्र आहें भरता है और कहता है, 'काश, काश, यह पके हुए मीठे आम की तरह की स्त्री मिल जाय!"

रवीन्द्र मूर्ख है। यह नहीं जानता कि इस संसार में केवल स्त्री की ही नहीं, पुरुष के भी जवान और स्वस्थ शरीर की भी कदर है। रवीन्द्र मूर्ख है, यदि बुद्धिमान होता तो कभी अपनी अभिलाषाओं का यूं दम घुटने न देता। यदि ऐसी ही स्त्रियाँ अच्छी लगतीं हैं तो इसी नगर में बहुत मिल सकती हैं। शरीर के रखने की विधि यह है कि मन को जवान रखिए और उसकी श्रेष्ठतम विधि अपने से छोटी अवस्था के नवयुवकों से प्रेम है। उनकी गर्म श्वासों से अधेड़ नसों में जमा हुआ रक्त फिर जवान होने लगता है। रवीन्द्र को चाहिए, वह सीधे ही किसी दिन मिसेज डाक्टर हरदत्तसिंह की कोठी पर पहुँच जाये। लड़का सुन्दर है, जवान है, बांका है—और इस धोखे में है कि उसे मिलेगी वह स्वयं से दो-चार वर्ष ही बड़ी होगी। इसलिए उसका काम तुरन्त बन जायेगा। मिसेज हरदत्तसिंह को भी उससे अच्छा युवक नहीं मिल सकता!

ज्यों-ज्यों शाम गहरी होती जाती है दातुन वालियों की आवाजें तेज होती जा रही हैं, "आने की छः-छः, आने की छः-छः" ले लो बाबू, बड़ी अच्छी दातुन है!"

× × ×

डाक्टर बाल साहब दातुन खरीदने लगे हैं। उन्होंने तीन दातुन चुने हैं। जेब में हाथ डाल कर दो पैसे निकाले हैं और दे दिये हैं। दातुनों को अपने दाहिने हाथ में घुमाते हुए वह बाजार की ओर बढ़ रहे हैं। बुक-मार्किट में उनकी दुकान है। बिल्कुल अंग्रेजी स्टाइल से

दुकान दोपहर दो बजे से लेकर साढ़े पाँच तक बंद रहती है। इस बीच में डाक्टर साहब घर जाकर विश्राम करते हैं। साढ़े पाँच बजे फिर लौटते हैं! दुकान का तखता अलग करते हैं और बैठ जाते हैं। बैठ जाते हैं और ग्राहकों (या मरीजों?) का इन्तजार करते हैं। कहते हैं ग्राहक और मौत का कोई विश्वास नहीं—परन्तु डाक्टर बाल साहब के बारे में कहना निश्चित है कि मृत्यु का विश्वास है, आज नहीं, तो दस-बारह, बीस वर्षों में जरूर आ जायेगी, परन्तु इस बीच में ग्राहक नहीं आने का!

डाक्टर बाल (साहब) होम्योपैथ
"तीन बातें—(i) मीठी दवाई
(ii) शीघ्र आराम
(iii) कम खर्च

दुकान के बाहर बोर्ड है, जिसे वहाँ लगे हुए पन्द्रह वर्षों से अधिक गुजर गये हैं। इस बीच में बोर्ड का रंग उतर गया है। अक्षर धुँधले पड़ गये हैं। कहीं-कहीं वर्षा के कारण जंग लग गया है। भीतर एक काऊच है जिसके गद्दे की कई वर्षों से फटी हुई अवस्था है। स्प्रिंग निकल आये हैं। एक ओर मानवीय धड़ की प्लास्टर आफ़ पेरिस की बनी हुई मूर्ति भले दिनों में भी इसका मूल्य दो-सौ से क्या कम होगा। एक मेज है। अलमारियों में दवाइयों की बोतलें रखी हैं। काऊच पर बाहर सड़क की तरफ़ मुँह किए डाक्टर साहब बैठे रहते हैं। गर्मियों में भी सभ्य समाज के नियमों को हाथ से नहीं जाने देते। ठंडा सूट पहनते हैं, टाई लगाते हैं। काऊच पर १६४३ या उससे पहले की मैडिकल पत्रिकाएं बिखरी रहती हैं। डाक्टर साहब उन्हें पढ़ते रहते हैं और ग्राहकों (या रोगियों?) का इन्तजार करते रहते हैं। मौत का विश्वास अवश्य है, परन्तु ग्राहक का कोई विश्वास नहीं।

पंद्रह वर्ष पहले जब डाक्टर धर्मपाल ने होम्योपैथ की डिग्री ली थी, तो उनके दिल में क्या-क्या उमंगें थीं। इस बाजार में दुकान खोली

तो रोगियों का जमघटा लग गया। पहले वर्ष पाँच हज़ार की आमदनी हुई। डाक्टर साहब अच्छे धनी परिवार से संबन्धित थे। पश्चिमी वातावरण में पले थे। अच्छे घराने में विवाह हुआ था। पहले वर्ष पाँच हज़ार की आय हुई तो नया फ़र्नीचर खरीदा गया। प्लास्टर आफ़ पेरिस की बनी मूर्ति लन्दन से मँगवायी गयी—परन्तु कुछ यूँ हुआ कि दिन-प्रतिदिन काम घटने लगा। डाक्टर बाल साहब ने लाख यत्न किये परन्तु काम घटता ही गया। घर का खर्च दिन-प्रतिदिन कम करने की आवश्यकता होने लगी। संचित पूँजी समाप्त हुई तो बाप का बीमा काम आया। वह खर्च हुआ तो जायदाद बिकी। बारह वर्ष न जाने कैसे बीते। डाक्टर साहब से उनकी पत्नी ने अनेक बार कहा कि वह यह काम छोड़कर छोटी-मोटी दुकानदारी शुरू कर दें परन्तु उनसे यह न हो सका। बारह वर्षों से मरीज़ों की राह देखते-देखते पैंतीस वर्षीय डाक्टर बाल साहब के बाल सफ़ेद हो गये हैं। पुराने सूट घिस गये हैं। हेट बिल्कुल फट गया है। स्थान-स्थान पर रफ़ू करवाने के बावजूद कोट का रंग उड़ गया है। इस सड़क की काया पलट गई है। कहाँ ये दोनों दिशाओं में वीरान थी, कहाँ अब चारों ओर स्टेशनरी और किताबों की दुकानें आ गई हैं। सारा दिन छात्रों और अध्यापकों का जमघटा लगा रहता है। डाक्टर साहब इन्ट्रोवर्ट हैं। बारह वर्षों में उनसे किसी पड़ोसी दुकानदार की जान-पहचान न हो सकी। भरी-पूरी दुनिया में वे अकेले थे। अकेले बैठे-बैठे पुरानी वैद्यक की पत्रिकाएँ पढ़ते रहते हैं। समय पर दुकान खोलते हैं, समय पर बन्द कर देते हैं—और अब तो दशा और अधिक ख़राब हो गई है। घर का फर्नीचर भी बिकने लगा है। टुथ पेस्ट ख़रीदने की शक्ति नहीं रही तो दातुन करने लगे हैं।

तीन बातें—(i) मीठी दवाई (जो कभी नहीं बिकी)
(ii) शीघ्र आराम (जो कभी नहीं आया)
(iii) कम खर्च (???)

डाक्टर बाल होम्योपैथ की दुकान किताबों और स्टेशनरी की दुकानों के समुद्र में घिरा हुआ एक चटियल द्वीप है जिस पर आज तक एक भी जलयान नहीं ठहरा।

"आने के छः-छः, आने के छः-छः !"

गोहर साहब भी दातुन खरीदने लगे हैं। गोहर साहब कवि हैं। बड़े अच्छे कवि हैं। मित्रों में बहुत लोकप्रिय हैं। सदा से बेकार हैं। विवाहित हैं, एक बच्चा भी है। मुँहफट होने की सीमा तक खुले हैं। अपने गुनाह चटखारे ले-लेकर सुनाते हैं। किसी का गुनाह देखकर चुप नहीं रह सकते—गोहर साहब एक एकन्नी के दातुन लेंगे। चुनते-चुनते छः की बजाय सात उठा लेंगे। दातुन वाले कभी यह विश्वास नहीं कर सकते कि कोई सुसज्जित बाबू एक-दो दातुन अधिक ले जायेगा। गोहर साहब एक दातुन अधिक लेंगे, परन्तु उसे घर नहीं ले जायेंगे। बाजार में मिलने वाले प्रत्येक मित्र से इस घटना का वर्णन करेंगे और फिर वही एक दातुन किसी मित्र को पकड़ा देंगे। कोई नहीं मिलेगा तो मार्ग में फेंक जायेंगे। चोरी का एक तिनका भी घर ले जाना उनके नियम के विरुद्ध है।

"आने के छः-छः, आने के छः-छः !"

× × ×

गुरमुखसिंह का बाप जिसे साधारणतया लाला जी कहते हैं, दातुन खरीदने के लिए धीरे-धीरे आगे बढ़ा है। गुरमुखसिंह लाखों का स्वामी है। उसके माता-पिता अलग रहते हैं तो भी उसके पास काफी पूंजी है। बूढ़ा स्वयं अपने मुँह से इस बात को स्वीकार करता है कि यदि गुरमुखसिंह से उसे भविष्य में एक पैसा भी न मिले तो भी उसका जीवन बड़ी सरलता से व्यतीत हो सकता है। लम्बी सफ़ेद दाढ़ी, घनी मूंछों और लम्बे कुर्त्ते और कछेरे वाला बूढ़ा दातुन खरीदने के लिए धीरे-धीरे आगे बढ़ा है। वह हर तीन दिनों के बाद दातुन खरीदता है। आज भी उसे एक आने के दातुन लेने हैं—छः मिलते हैं, उसे ज्ञात है

परन्तु वह आठ लेगा। दातुन बेचने वालियाँ कभी दातुन नहीं गिनतीं और फिर उनकी दृष्टि पड़ने का डर भी हो तो दोनों दातुन चुप के से थैले में डाले जा सकते हैं। बूढ़ा, लाखों का मालिक बूढ़ा, चोरी का एक तिनका भी घर ले जाने का समर्थक है। यदि दुकान के पुराने कारबन, आग जलाने के लिए लकड़ी की पेटियां, पुराने टाट, किताबों की जिल्दें घर ले जाई जा सकती हैं तो दो दातुन अधिक ले जाने में क्या हर्ज है।

× × ×

साँझ हुई है तो रोज़ा होटल पर भी रौनक की धूप चमक उठी है। इन्द्रू बाहर छिड़काव कर रहा है। भीतर कई ग्राहक बैठे हैं, चाय पी रहे हैं, आइसक्रीम खा रहे हैं। आज रोज़ा होटल पर रौनक है। बूढ़ा गठिया-ग्रस्त मालिक भी बूढ़ा दिखाई नहीं देता। खिज़ाब ने उसके बालों को कनपटियों तक काला कर दिया है। नये सफ़ेद बे दाग कपड़े पहने हुए वह एक बड़ा मोटा काला टिड्डा-सा दिखाई पड़ता है। रोज़ा होटल पर रौनक देखकर चौक में खड़े हुए तीन नवयुवक लड़के आश्चर्य से देख रहे हैं। उनके लिए यह नई बात हैं।

"ओह याद आया!" उनमें से एक कहता है, "आज शनिवार है। फिल्लौर के शिक्षार्थी पुलिस अफ़सरों की छुट्टी है। वे सफ़ेद कपड़ों में आज यहाँ सिनेमा देखने आये हैं। अभी पिक्चर शुरू होने में एक घंटा है। देखो, सभी ही तो पुलिस वाले हैं!"

रोज़ा होटल के साथ साइकिल मरम्मत की दुकान है। ज्ञानी इन्द्रसिंह सारा दिन काम में व्यस्त रहता है। पंक्चर, वेल्डिंग, बाल, टायर, ट्यूब......सारा दिन, सुबह से लेकर साँझ तक वह काम करता रहता है। परिश्रम करना जानता है, इसीलिए दुकान फैल रही है। काम बढ़ रहा है।

× × ×

और आगे चलें तो कचहरी रोड और जी० टी० रोड का कोना

मिलता है। पानों और सिग्रेटों की दुकान है। मालिक पिशावर से आये हुए सिख हैं। बड़ा विशाल काम है। दस-बारह मरकरी ट्यूबें लगी हुई हैं। रात हो तो चकाचौंध हो जाती है। सिग्रेट और पान के शौकीन, खाना खाकर सैर को निकलते हुए निश्चिन्त, शाम के काम की शिफ़्ट से वापस आते हुए मज़दूर कारीगर—एक जमघटा लग जाता है। गुप्ता पनवाड़ी का विचार है कि सामने पिशावरियों की बिक्री तीन-सौ रुपये दैनिक से अधिक है। सारा दिन वे काम में व्यस्त रहते हैं। पानों के सैंकड़ों बल्कि हज़ारों बीड़े बाँधकर तैयार रखते हैं। मीठा पान, इलायची-सुपारी पान, देसी पत्ता, बनारसी पत्ता, मुरादाबादी तम्बाकू वाला पान, कन्नौजी तम्बाकू वाला पान—सुरती और नसवार वाला पान—इसमें चूना कम है, इसमें कत्था अधिक है। प्रत्येक प्रकार, विभिन्न प्रकार के पान शाम तक सैंकड़ों बल्कि हज़ारों की संख्या में तैयार हो जाते हैं। शाम होते ही बर्फ़ के एक बड़े टुकड़े पर यह सजा दिये जाते हैं। आते जाइए और लेते जाइए।

बड़ा काम है। असीम आय है, परन्तु मान लीजिए, जब पिशावर से आये थे तो पूँजी के रूप में पास एक फूटी कौड़ी भी न थी। स्थान पर अधिकार जमाया तो सिग्रेट के एजेन्टों ने एक दिन का उधार देना शुरू किया। सुबह वे सिग्रेट के पैकेट दे जाते हैं, दूसरी सुबह अपने दाम ले जाते। होते-होते यहाँ तक हो गया कि अब वे इकट्ठे थोक पैमाने पर कम्पनी से सीधे मोल लेते हैं—पहले आधा कोना ही क़ब्ज़े में था। बाकी आधे भाग में स्टेशनरी और क़लमों की दुकान थी। मालिक पेशावर से आया हुआ उनका ही एक आदमी था। रामदत्तमल, दुकानदारी उसने भी इसी प्रकार प्रारम्भ की थी। कुछ सौ रुपये लेकर वह दिल्ली गया था और मुसलमानों की समाप्त होती हुई दुकानों से पुरानी स्टेशनरी खरीद लाया था। छः मास में तीन-सौ के बारह-सौ बना कर वह फिर दिल्ली गया तो एक हज़ार का माल ले आया। सरकारी दफ्तरों में लगे हुए अधिकतर क्लर्क उसकी भाँति ही शरणार्थी

थे । उन दिनों "लोकल और शरणार्थी" दो शब्द ही चरित्र और कारोबार के दो अलग-अलग स्तरों का अनुमान प्रस्तुत कर देते थे । इसलिए उसका काम चमक उठा । अब के सारा माल तीन महीनों में ही बिक गया । ४८ के अन्त तक यूँ होने लगा कि स्टेशनरी के बड़े डीलर्ज के एजेन्ट स्वयमेव आने लगे । आर्डर ले जाने लगे और हुंडियों पर माल देने लगे । काम बढ़ता गया । रामदत्तामल जिसने जीवन में चार-पाँच हज़ार से अधिक राशि एक साथ नहीं देखी थी, एक बार पच्चीस हज़ार रुपया लेकर माल ख़रीदने के लिए दिल्ली गया तो दिल्ली के थोक व्यापारियों की आंखें चुंधिया गईं । मार्कीट में पैसा था ही नहीं—वह वहाँ से चालीस हज़ार का माल लाया । स्थान छोटा था, इसलिए पगड़ी दी और दो-तीन दुकानें छोड़ कर साथ ही कचहरी रोड पर एक दुकान ले-ली । दुकान सामान से भर गई । उसकी गिनती नगर के बड़े-बड़े स्टेशनर्ज में होने लगी ।

रामदत्तामल एक सफल आदमी है । जितना वह सफल है उतना उसका छोटा भाई सुरजीतसिंह नहीं । इसके कारण हैं । रामदत्तामल रबड़ का बना हुआ है । अवसर पड़ने पर झुक जाता है और अवसर पड़ने पर ऐसा कठोर हो जाता है कि उसे दोहरा करना असम्भव हो जाता है । आप उसे गाली भी दे दें, यदि आपके पास उसका कोई काम रुका हुआ है या आपसे उसे पन्द्रह-बीस रुपये आय की आशा है, वह बुरा नहीं मानेगा । अत्यन्त चतुराई से आपकी गम्भीरता से दी गई गाली को मज़ाक में ले जाएगा । स्वयं को एक और मोटी-सी गाली देकर आपका दिल खुश कर देगा और फिर बड़ी मिन्नत से अपना काम करने के लिए कहेगा । इस बीच में, यदि आपका क्रोध अभी शेष है तो वह ध्यान से आपके चेहरे की ओर देखता रहेगा । यदि कभी बाकी है तो वही क्रिया दुहरायेगा । आप उसका काम करने पर विवश हो जायेंगे ।

रामदत्तामल एक सफल व्यक्ति है । उसने निर्धनता के दिन देखे हैं । इसलिए वह पैसे से प्यार करता है । चार आने की वस्तु वह बारह

आने से कम में नहीं देता। स्टेशनरी की वस्तुओं पर मूल्य लिखा नहीं होता। दो रबड़ देखने में बिल्कुल एक-जैसे हो सकते हैं। आपको एक रबड़ पसंद नहीं है, उसका मूल्य उसने छः आने बताया है। आप दूसरा ले सकते हैं जिसका मूल्य शायद चार आने है, परन्तु चूंकि वह बारह आने बता रहा है और साथ ही कह रहा है कि रबड़ न्यूजीलेंड का बना हुआ है, आप दूसरा खरीद रहे हैं। रामदत्तामल सचमुच एक सफल व्यक्ति है।

उसका छोटा भाई अलबत्ता इतना सफल नहीं। वह सीधा-सादा नार्मल आदमी है। चार आने की चीज चार आने में ही देता है। परिचितों और मित्रों को कम मूल्य पर देने में भी बुराई नहीं समझता। उधार भी दे देता है। इसलिए बड़ा भाई उसे अधिक देर तक दुकान पर नहीं बैठने देता। वह उसका उस सीमा तक ही प्रयोग करता है, जिस सीमा तक आर्थिक लाभ इजाजत दे। लीजिए, स्टेशनरी मार्ट देखिए। आज-कल कुछ नई चीजें आई हुई हैं। उन्हें मोल लीजिए।

× × ×

शाम हुई है, गुरमुखसिंह अपने छोटे लड़के के साथ गुजरा है। रामदत्तामल के पास संयोग से ग्राहक कम हैं। "ओ ए जीत...... इधर आ, हुक्का तैयार है। बस तम्बाकू डालने की कमी है!" वह गुरमुखसिंह के छोटे लड़के को सम्बोधित करके कहता है, जिस तम्बाकू के नाम से चिढ़ है और जो जवाब में उसे मोटी-सी गाली देगा। "जाओ कुत्तया! शर्म नहीं आती मुझे हुक्का दिखाते हुए। डूब मर जाकर।" "आज पानी के स्थान पर पेशाब भी डाल कर रक्खा है। इससे सिर धोना है तो आ जाओ!" वह फिर कहता है।

आज उसे गुरमुखसिंह से पुराने बिल के चालीस रुपये वसूल करने हैं। आज वह गुरमुखसिंह से कुछ गालियाँ सुनना चाहता है। गालियाँ सुनते हुए वह स्वयं को भी मज़ाक-मज़ाक में दो-चार गालियाँ दे देगा।

इसीलिए वह बच्चे को चिढ़ा रहा है। बिल वसूल करने का ढंग बहुत अच्छा है, आजमाया हुआ है। अनेक बार सफल हुआ है।

× × ×

स्टेशनरी की दुकान के साथ एक होटल है। ढाबा है; जहाँ चार आने में थाली मिलती है। मास के अन्त में जब विभिन्न प्राइवेट संस्थाओं में काम करने वाले कम वेतन के कर्मचारियों के पास पैसे समाप्त हो जाते हैं तो वे यहाँ शरण लेते हैं। चार चपातियाँ, एक-एक दाल और सब्जी की प्लेट और मूल्य केवल चार आने! पंडित शरीफ आदमी है, इसलिए अधिक पैसे नहीं कमा सकता। चलते पुर्जे आदमी उधार करके लौट कर मुख तक नहीं दिखाते। मासिक खाना केवल पंद्रह रुपये में मिलता है। अपना घी साथ लाइए। डिब्बे में बन्द करके ताला लगा दीजिए। घी वहाँ रहने दीजिए। अब चाहे दाल में, चाहे सब्जी में मिलाकर खायें, पंडित वही पंद्रह रुपये मासिक लेगा।

पंडित शरीफ़ आदमी है तो भी १९५७ में उसकी आय सौ रुपये से अधिक नहीं। जिस स्थान पर उसका ढाबा है, वहाँ कोई और हो तो सौ रुपया प्रतिदिन कमाये। कम-से-कम पंडिताइन का यही विचार है। पंडिताइन को पहाड़ से मैदानों में आये पाँच वर्ष से अधिक नहीं बीते परन्तु इस बीच में उसने एक संसार देख लिया है, एक युग पहचान लिया है। गोरा लाल रंग, सुडौल शरीर, भुजाओं और गले पर रेखाएँ और चिन्ह, पाँव में मोटे-मोटे कड़े। पंडिताइन जितनी सुन्दर, बाँकी और तेज और चालाक है, पंडित उतना ही बदसूरत, ढीला-ढाला, और भोला है। पंडित पाँच वर्ष पूर्व जब पाँच-सौ रुपये लेकर गाँव शादी करने के लिए गया तो गाँव-भर की आंखें चौंधिया गईं। विवाह हो गया और वह पंडिताइन को साथ ले आया और अब······

और अब पंडिताइन घर पर होटल चलाती है और पंडित जी बाज़ार में। भोंदू जमादार की भांति पंडित भी बेबस है। बेचारा सीधा-सादा है। उसे संसार के दाव-पेंच नहीं आते। वह नहीं जानता कि

पंडिताइन के पास जो सोने का जड़ाऊ हार है, वह बाजार के होटल की कमाई का नहीं है। वह नहीं जानता कि शाम को जब वह होटल पर खून-पसीना एक कर रहा होता है, उसके घर में स्पेशल स्टाफ़ का मुंशी सुलखनसिंह पंडिताइन के तले हुए खास पूड़े खा रहा होता है—पंडित को आज से पचास वर्ष पूर्व पैदा होना चाहिए था। यदि यही बात थी, यदि पंडिताइन शुरू जवानी में, पहाड़ पर, सैलानियों के साथ यही कुछ करती रही थी तो पंडित को विवाह की क्या आवश्यकता थी ? परन्तु कौन उसे समझाये ?

× × ×

शाम आगे बढ़ चली है। साढ़े पांच से कुछ मिनट ऊपर हो गये है। बड़ी गहमा-गहमी है। दो दिन वर्षा होने के बाद वातावरण आज साफ़ हुआ है, इसलिए पंक्तियों के बाद पंक्तियों में हस्पताल और मेडिकल कालेज के पंछी उड़ते आ रहे हैं। आज शापिंग-डे है। शनिवार की साँझ है। कुमार नरेन्द्र और प्रकाश, शिकार की खोज में ठहरे हैं। एक ही समय में आकर इकट्ठे हुए हैं। कुमार, नरेंद्र, प्रकाश—चाय के शिकारी हैं; टी हन्टर्ज़ हैं। नगर के विभिन्न भागों में रहते हैं परन्तु शाम के चार बजे के बाद से चौक घंटाघर ही उनके शिकार का जंगल है। यहाँ ही इकट्ठे होते हैं। रात के नौ बजे तक साथ रहते हैं और रात के नौ बजे एक शब्द कहे बिना, दूसरे दिन मिलने का वायदा किये बिना, वह फिर यहाँ आ मिलते हैं। गत छः मास से एक भी नाग़ा नहीं हुई। एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि उनकी शाम इकट्ठी न बीती हो।

कुमार ने नरेन्द्र और नरेन्द्र ने प्रकाश की ओर देखा।

इसी समय घंटाघर की एक घड़ी ने साढ़े पाँच बजाये। एक साइकिल-सवार सनसनाता हुआ उनके पास से गुजरा और बूट-पालिश वाले छोकरे ने बढ़कर चौथी बार उनसे बूट-पालिश करवाने की प्रार्थना की।

लड़का शायद नया था। घंटाघर के इस चौराहे के बास-पच्चीस पालिश वाले छोकरे इस जुंडली के परिचितों में से थे। उन्हें बूट-पालिश

करवाने की प्रार्थना के साथ इन साथियों के बूटों की ओर देखने का कष्ट नहीं करना पड़ता था; केवल चेहरे की ओर देखना पड़ता था। जिससे अनुमान हो सकता था कि उनके पास पैसे हैं या नहीं। लड़का शायद नया था।

"साथी……"कुमार ने बड़े दार्शनिक ढंग से बूट-पालिश वाले छोकरे को लेक्चर देना आरम्भ किया, "तुम तीन बार पहले हमें यह बात कहकर अपना और हमारा समय नष्ट कर चुके हो। क्या तुम देखते नहीं कि हम बहुत जल्दी में हैं और ज्योंही हमारा साथी यहाँ पहुँचेगा, हम चल पड़ेंगे। तुम कोई और आदमी देखो ……और आदमी……!"

लड़का अब बिल्कुल निराश होकर लौट गया। प्रकाश ने कोट की जेबों में हाथ ठूंस लिये। नरेन्द्र बार-बार एड़ियों के बल खड़ा हो कर अधिक 'स्मार्ट' लगने का प्रयत्न करने लगा और कुमार ने बढ़ी हुई शेव पर हाथ फेरते हुए दूर बाज़ार में गिरजाघर चौक तक दृष्टि दौड़ाई।

फिर जैसे मूक वाणी में उसने कहा, "कोई नहीं आ रहा है!"

(कर्स यू, उसने अपने आपसे कहा—तुम चुप नहीं रह सकते?)

प्रकाश ने पहली बात शायद सुन ली थी। उसने आँखों-ही-आँखों में उसका समर्थन किया। अब नरेन्द्र की आंखें सामने पिशावर होटल में बैठे लोगों का जायज़ा ले रही थीं। पहली मेज़ पर बैठे कुछ व्यापारी बड़ी भेदपूर्ण बातें कर रहे थे। उनके बराबर वाली दूसरी मेज़ पर फ़िल्लौर से आये हुए शिक्षार्थी पुलिस-अफ़सर थे, जो बात-बात पर ऊँचे ऊँचे कह-कहे लगा रहे थे। पिछली मेज़ पर केवल दो बूढ़े थे। उनमें से एक की आकृति जापान के प्रधान-मंत्री मिस्टर किशी से मिलती थी, या कम-से-कम पहली दृष्टि देखते ही नरेन्द्र को यह बात प्रतीत हुई थी।

सहसा उसने पास से गुज़रती हुई एक अर्ध-नग्न पागल स्त्री को

देखते हुए कहा, "जीवन कुंठाओं की एक माला है, जो व्यक्ति अपने गले में पहने फिरता है।"

"वाह........" कुमार चौंक उठा। "......किस का उद्धरण है दोस्त ?"

परन्तु नरेन्द्र ने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसकी दृष्टि पिशावर होटल के भीतरी वातावरण में गुम हो गई, जहाँ अभी-अभी एक नवयुवक दो बच्चों के साथ प्रविष्ट हुआ था। उसने अपनी दृष्टि बूढ़े व्यापारियों वाली मेज़ से उठती हुई चाय की भाप में गाड़ दी। फिर उसने एक ठंडी साँस ली। होठों में कुछ कहा और एड़ियों के बल खड़े होकर प्रकाश के कंधे पर हाथ रख दिया। प्रकाश ने चौंक कर उसकी ओर देखा। कुमार ने बढ़ी हुई शेव पर हाथ फेरते हुए अपनी जुकाम-ग्रस्त नाक को साफ़ किया।

उन तीनों की दृष्टि फिर मिली।

चौक घंटाघर जवान था। प्रत्येक ओर गहमा-गहमी थी। परन्तु कुमार के वचनानुसार ".......कोई नहीं आ रहा है !"

एक शब्द कहे बिना वे धीरे-धीरे बाजार की ओर बढ़ने लगे। पाँच बजकर पैंतालीस मिनट हो गये थे और अभी तक उन्होंने शाम की पहली चाय भी नहीं पी थी। विचित्र बात है, चलते-चलते नरेन्द्र ने सोचा। कल इस समय वे शाम की तीसरी चाय भी पी चुके थे और अभी ब्रह्मदेव की चाय शेष थी। ब्रह्मदेव, जो कविता लिखता था और कुमार ने जिसकी कविता में नित्शे और शोपनहावर के दर्शन का संदेश ढूँढ़ निकाला था—आश्चर्य की बात थी—आज अभी उन्हें शाम की पहली चाय भी नहीं मिली थी।

बाजार में खूब चहल-पहल थी। शनिवार की शाम थी, इसलिए मेमोरियल और बी० टी० कालिज की छात्राएं शापिंग के लिए बाजार आई हुई थीं। कुमार की दृष्टि एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे चेहरे पर फिसलती हुई यूँ चल रही थी कि यदि कहीं रुक जाती तो उन

चेहरों के घायल हो जाने का भय उत्पन्न हो जाता। प्रकाश सदा की भाँति सबसे आगे, पतलून की जेबों में हाथ डाले, भूमि की ओर देखता हुआ चल रहा था। कभी उसकी दृष्टि उठ जाती तो अपरिचित चेहरों में पहचान के चिन्ह ढूंढ़ती हुई, असफल होकर जमीन पर लौट जाती। उसके प्यारे-प्यारे बाल बिखरे हुए थे, घनी, परन्तु कटी हुई सुनहली मूंछों के शरारती कोने सदा की भाँति निश्चल थे। ये कोने किसी परिचित चाय पिलाने वाले को देखते ही यूँ हिलना आरम्भ कर देते जैसे पुतलियाँ नाचने लगती हैं—नरेन्द्र सदा की भाँति सोच रहा था। वास्तव में वह सोचता बहुत था और एक बार तो डैडी ने उसे कह दिया था, "निन्दी, तू अगर सोचना कम और काम करना अधिक कर दे, तो पी० सी० एस० तो क्या आई० ए० एस० की प्रतियोगिता भी तेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं!" परन्तु यह बहुत पुरानी बात थी। यह उस समय की बात थी, जब उसके डैडी यह समझते थे कि उनका बेटा उनकी तरह ही 'लॉ' करेगा और फिर किसी प्रतियोगिता में बैठकर बहुत बड़ा अफ़सर बन जायेगा। परन्तु अब तो नरेन्द्र कालिज भी छोड़ चुका था और जब से उसने कालिज छोड़ा था तबसे उसका जेब-खर्च बन्द हो गया था और जब जेब-खर्च बन्द हो जाये तो चाय की समस्या रोटी और शिक्षा की समस्याओं से अधिक गम्भीर हो जाती है—यूँ चाय तो घर भी मिल जाती है, परन्तु जिसे चाय कहते हैं वह रेस्तराँ में बैठकर ही पी जा सकती है······

"कोई नहीं आ रहा है"

(कर्स यू, क्या तुम चुप नहीं रह सकते?)

कुमार के चेचक-ग्रस्त चेहरे पर बढ़ी हुई दाढ़ी कुछ यूँ लग रही थी जैसे गर्म राख पर बारिश की बूंदें पड़ जाने के बाद किसी ने तिनके से उस पर बेल-बूटे बना दिये हों या साफ़ सलेट पर किसी ने गुरुमुखी लिखने के बाद गुजराती लिख दी हो। अन्तिम उपमा एक बार अख्तर ने दी थी······भगवानदास अख्तर, जो कवि था परन्तु एक अच्छी

नौकरी होने के कारण प्रायः 'चाय का कबूतर' बना करता था। कितनी आश्चर्य की बात थी, आज वह भी बाजार में दिखाई नहीं दे रहा था। कुमार को याद आया कि एक बार उसने अख्तर की एक उर्दू कविता का अनुवाद हिंदी में करने का वायदा किया था। इस वचन और वचन-पालन के बीच के समय में वह लगभग पचास बार अख्तर से चाय पी चुका था—उसे बहुत क्षोभ हुआ—काश अख्तर मिल जाये—उसने सोचा। वह अभी उसके साथ किसी रेस्तरां में चला जायगा और चाय पीते हुए उस कविता को हिन्दी वेश पहना देगा। उसे अपनी आशु-प्रतिभा पर गर्व था। अठारह वर्ष की आयु से लेकर अब तक आवारागर्दी के इन सात वर्षों में उसने सेंकड़ों कविताओं को जन्म दिया था—हजारों फुटकल शेरों का सृजन किया था परन्तु सब चाय के इक्के-दुक्के प्यालों के बदले विभिन्न कालेज-विद्यार्थियों के नाम से कालेज-मेगजीन में छप चुके थे।

"...... कोई नहीं आ रहा है !" (कर्स यू......)

इन दोनों के अतिरिक्त प्रकाश था—छोटा-सा, प्यारा-सा, जिसे देखकर चूमने को जी चाहे। सामने बैठाकर नर्सरी-राइम्ज सुनने को जी चाहे। प्रकाश, जो इस काफ़िले का वेनगार्ड था वह बी० ए० में तीन बार फ़ेल होने के बाद पास होने की इच्छा छोड़ चुका था और अब ये तीन भूली-भटकी शक्तियाँ, उद्देश्यरहित बहते हुए एक स्थान पर इकट्ठी हो गई थीं—आपस में मतभेद रखते हुए भी जब वे शिकार पर निकलते तो इकट्ठे होते। एक निशाना बाँधता, तो दूसरा लबलबी खींचता, और जब तीसरा भाग कर शिकार उठा लाता तो इस सम्मिलित परिश्रम का फल तीनों बड़ी शांति से बैठकर चखते—चक्कर काटते हुए वे फिर चौक के उत्तरीय भाग में आ गये थे—सामने रोज़ा होटल था जो इस समय खाली पड़ा था।

प्रकाश की दृष्टि सहसा उठी—परिचय की रेखाएं उभरीं। वेनगार्ड

रुका तो काफ़िला रुक गया। कुमार की घायल कर देने वाली दृष्टि ने रुक कर आने वाले को छेदा—दत्त साहिब थे!

प्रकाश ने कहा, "हेलो दत्त साहिब, भई वह कालिज-मैगजीन की एडीटरशिप का क्या हुआ?"

दत्त साहिब झिझके। उन्होंने एक पग आगे बढ़ाया, रुक गये, फिर बिल्कुल ही ठहर गये। तीनों से बारी-बारी हाथ मिलाते हुए वह बोले, "छोड़िए साहिब, कालिज मेगज़ीन की एडीटरशिप कौन-सी बड़ी चीज़ है और मैं कब इन बातों की परवाह करता हूँ। मेरी ओर से चाहे किसी को दे-दें......."

इससे पूर्व कि वह बात समाप्त करके चल दें, कुमार उनके दाएं तरफ़ हो गया, बाएं नरेन्द्र था और सामने प्रकाश था ही। दत्त साहिब बिल्कुल घिर गये। उन्होंने जेबों में हाथ डाल लिए परन्तु उनकी पुत-लियाँ बेचैनी से घूमती रहीं—

प्रकाश कह रहा था, "परन्तु दत्त साहिब, आप परवाह न करें, हमारा तो कर्त्तव्य है कि अधिकार अधिकारी को मिले। मैं प्रोफ़ेसर-इन्चार्ज से स्वयं मिलूँगा और देखूँगा कि आपका काम हो जाये..."

कुमार ने कहा—"यह बैठकर करने वाली बातें हैं साथी! आओ सामने रोज़ा होटल में बैठें। मैं स्वयं सोच रहा था कि इस सम्बन्ध में डेपूटेशन लेकर प्रोफ़ेसर इन्चार्ज से मिलूँ।"

नरेन्द्र कालिज छोड़ चुका था। परन्तु फिर भी उसने कहा, "हाँ दत्त साहिब! मित्र यदि इतनी भी सहायता न करें तो लानत है उन पर......"

और साथ ही उसने सामने वाले होटल की ओर पग बढ़ाया, परन्तु शायद यह उसकी ग़ल्ती थी क्योंकि उसके हटते ही बाईं तरफ का मार्ग खाली हो गया और दत्त साहिब ने आगे बढ़ते हुए कोमल वाणी में कहा, "......मैं ज़रा डाक्टर के पास जा रहा था। डेडी को दौरा

पड़ा है और उसे अभी बुलाकर लाना है······इस सम्बन्ध में फिर बातें होंगी—अच्छा चीरियो !"

और हाथ मिलाये बिना दुगनी तेज़ी से आगे बढ़ गये।

कुमार ने फिर जैसे मूक-वाणी में कहा, "यह कबूतर भी उड़ गया !"

नरेन्द्र के पग रुक गये। उसने फिर जेबों में हाथ ठूँस लिए और प्रकाश ने बड़ी ही प्यारी मुस्कराहट से दत्त साहिब की पीठ को विदा कही।

वे घंटाघर चौक से फिर बाज़ार की ओर लौटने लगे। चहल-पहल बढ़ गई थी। नरेन्द्र ने एक लम्बा-चौड़ा विवाद छेड़ दिया। फ्रॉयड और युंग के मतभेद—न्यू-फ्रायडियन स्कूल का मनोविज्ञान, मैकड्गल और वुडवर्ड से चलते-चलते मनोविज्ञान और काम-विज्ञान के बीच का पुल पार करते हुए 'किन्जे रिपो'' तक। प्रकाश सदा की भाँति चुपचाप सुनता रहा। कुमार ने एक-दो बार नरेन्द्र को टोका, कुछ बढ़ावा दिया फिर एक-दो बार सिर हिला कर अस्वीकृति की घोषणा की—फिर एक दम उसने कहा—"मैं तुमसे इस समस्या पर उलझ सकता हूँ। किन्जो रिपोर्ट क्या है ? अमरीका के पूँजीवादी समाज में यदि ये आँकड़े ठीक भी मान लिये जायें तो भी निष्कर्षों को सारे संसार के लिए जनरलाइज़ कैसे किया जा सकता है ? मैं शर्तिया कह सकता हूँ कि रूस में यदि ऐसी ही सर्वे की जाये तो ये अस्वाभाविक आँकड़े सिकुड़ कर इतने कम रह जायेंगे कि तुम किन्जे को एक झूठे गप्पी के सिवाय और कुछ नहीं समझोगे। अब मेरी स्टूप्स की बात देखो······" और फिर जैसे रुक कर उसने आँखों-ही-आँखों में कहा, "अख्तर साहिब !"

अख्तर साहिब भारी-भरकम व्यक्ति थे। उर्दू में लिखते थे। खुल-कर लिखते थे और उससे कुछ अधिक खुलकर बोलते थे। कुमार रुका तो सभी रुक गये—"ओह, हेलो अख्तर साहिब !" कुमार ने कहा, "हम काफ़ी देर से घूम रहे हैं और अभी कहीं बैठने का अवसर नहीं मिला—कहाँ बैठें ?"

प्रकाश ने कहा, "सामने बम्बे केफ़ेटेरिया अच्छा रहेगा !" और उसने आगे पग बढ़ाया। अख़्तर साहिब दो पग उसके साथ चले, फिर रुक गये। कुमार से उन्होंने कहा, "वह मेरी नज़्म, क़िब्ला ?"

कुमार ने उसी प्रकार चलते हुए उत्तर दिया, "कल आपको मिल जायेगी !"

अख़्तर साहिब ने बड़ी व्यंग्यात्मक मुस्कराहट से कहा, "अब आपका क्या पैरोग्राम है ?"

"बैठेंगे !" प्रकाश ने कहा, और चलता रहा।

अख़्तर साहिब पीछे रह गये थे। उन्होंने पुकार कर कहा, "अच्छा कुमार साहिब ! कल मुलाकात होगी। मैं ज़रा ट्यूशन पर जा रहा हूँ।"

अख़्तर साहिब चले गये तो तीनों के पग फिर बाजार की ओर लौट आये। नरेन्द्र का चेहरा काला पड़ गया था। वास्तव में उसे असफलता का अनुभव होते ही लज्जा आने लगती थी। यह उस वाता-वरण का प्रभाव था जिसमें उसका पालन हुआ था।

"साला !" कुमार ने सम्मति दी।

"हाँ साला !" प्रकाश ने समर्थन किया।

छः बजने वाले थे। घंटाघर सदा की भाँति अपने स्थान पर खड़ा था। चौक के गोल चक्कर की पटरियों पर दातुन बेचने वालियों की आवाज़ें अधिक तेज़ हो गई थीं। 'हम से तो हरीश ही अच्छा है'—प्रकाश ने सोचा—छोटा-सा लड़का, परन्तु जब उसे चाय की इच्छा होती है तो व्यर्थ बातों में समय नष्ट नहीं करता। सीधे कह देता है, "यार तुम्हारे पास दवन्नी तो होगी, लाओ, तो एक कप चाय ही पी लें।"

यूँ चाय पिलाने वाला भी सस्ते में छूट जाता है और हम······ हम ···' उसे अपने साथियों पर क्रोध आने लगा। यदि वह अकेला होता तो बिमला सूद के घर ही चला जाता। उसके लेख की प्रशंसा करता। चाय भी मिलती और सुन्दर संग भी, परन्तु वह अकेला नहीं है और ये साथी हैं कि साले कंगले······

'साला कंगला है'—कुमार सोच रहा था। 'मैं तो कभी-कभी पैसे खर्च भी कर देता हूँ परन्तु इसकी जेब तो सदा खाली ही रहती है। यदि जेब में पैसे हों भी तो भी नहीं निकालेगा। शर्म आनी चाहिए, स्वयं को सभ्य कहता है,'—नरेन्द्र चुप था, उसका मन खाली था, परन्तु विद्रोह के कीटाणु उसके मन में भी पल रहे थे।

उद्देश्य में असफलता ने उन तीनों में मतभेद उत्पन्न कर दिया था।

चुप्पी ने संदेह को हवा दी तो नरेन्द्र ने कहा, "हरीश कह रहा था कि उसने मेरी वह किताब तुम्हारे पास देखी है जो तुम्हारे अनुसार गुम हो चुकी है।"

सम्बोधन कुमार से था। कुमार चौंका। उसने कहा, "साथी, तुम्हें पहले मेरे महत्व और हरीश की क़ीमत को मानसिक रूप से तोलना चाहिए था और फिर उसकी बात पर विश्वास करना था। मुझे यह बात पसन्द नहीं है।"

प्रकाश ने एक उक्ति कहकर उनका समझौता करवा दिया, "शॉ की उक्ति है कि अपनी पुस्तकें दोस्तों को उधार न दो। मेरा उदाहरण लो। मैंने मित्रों की किताबों से लायब्रेरी बना ली है।" कहकर वह हँसा और जब ब्रह्मदेव ने उसके कंधे पर हाथ रखा तो वह और अधिक हँसने लगा।

घंटाघर की एक घड़ी में सवा छः और दूसरी में साढ़े छः बजे हैं······" उसने कहा, "ब्रह्मदेव जिंदाबाद! हम तुम्हारी कविता सुनेंगे, ब्रह्मदेव! आज नरेन्द्र भी सुनेगा।"

नवागत बाछें फैलाकर हंसा। उसके मुख से खुली हँसी की आवाज निकली, "जार, कविता सुनलो परन्तु मेरे पाश पैशे नहीं हैं तुम्हारी चाय के लिए!" उसके चेहरे पर क्षण-भर के लिए बेचारेपन की भावनाएं रेंग गईं। हाथ, जो जेब में पहुँच कर कविता वाले कागज पर सहला था, रुक गया।

नरेन्द्र ने मुँह दूसरी ओर फेर लिया, "उसे कहो, ऐश करे!" उसने कुमार से कहा।

कुमार ने कहा, "आज न तुम नित्शे हो, न शोपनहावर! अब हमें जाने दो!" और वह जल्दी से आगे बढ़ गया। ब्रह्मदेव उन्हें देखता ही रहा। उसके चेहरे पर बेइज्जती के चिन्ह उभरे। फिर वह खिलखिला कर हँसा।

"शाले!" उसने कहा।

प्रोफ़ेसर रणधीरसिंह आ रहा था। साहित्य, दर्शन और मनोविज्ञान पर एक साथ बातें करने वाला। कथारसिस, साइकोडाइलैकटिक्स और न जाने किस-किस विषय पर बोलने पर प्रोफ़ेसर रणधीरसिंह—पिजन नम्बर वन, कबूतर नम्बर एक! प्रकाश ने उसे जा लिया, "हेलो रणधीर!" उसने कहा, "वह नरेन्द्र और कुमार भी खड़े हैं। आज सार्त्र के अस्तित्ववाद पर धकल्ले की बहस का प्रण किये। कुमार ने तो मर-मिटने की ठानी है।"

बहस का लालची रणधीरसिंह रुक गया। उसने कहा, "मैं एक जरूरी काम से जा रहा था, परन्तु कुछ देर बातें करते हैं। हाँ, क्या समस्या थी?"

प्रकाश ने कहा, "बैठकर करने वाली बातें हैं''''''कुमार, बैठें कहाँ?" और उसने लौटकर पिशावर होटल की ओर देखा। "वे लोग बहुत ऊँची रिकार्डिंग करते हैं।"

"हम उन्हें कह देंगे!" नरेन्द्र ने कहा।

रणधीरसिंह ने कोई आपत्ति नहीं की। वह सामने किसी लड़की को आते देख रहा था। जब वह समीप आ गई तो उसने दोनों हाथ जोड़ दिये। उसे रुकते देख कर वह उन्हें छोड़ कर उधर चला गया। जब रणधीरसिंह उस लड़की के साथ पिशावर होटल में घुस गया तो उन तीनों को यह बात अनुभव हुई कि दर्शन पर बहस से अधिक आकर्षक और महत्वपूर्ण वस्तु स्त्री का सामीप्य है।

अब वे सहन-शक्ति की अन्तिम मंज़िल पर थे।

इसलिए जब उन्हें हरीश मिला तो कुमार ने बड़े क्रोध से उसकी ओर देखा। नरेन्द्र ने मुख दूसरी ओर करके जमीन पर थूका और प्रकाश ने केवल इतना कहा, "और लीजिए!"—हरीश, छोटा-सा लड़का। जब उसे चाय की इच्छा होती है तो साफ़ कह देता है, "यार, तुम्हारे पास दवन्नी तो होगी'—नरेन्द्र ने सोचा, 'उसे भगाना चाहिए, भगाना चाहिए उसे!'

(मक्खी को उड़ाना चाहिए। कौन माई का लाल है, जो चार व्यक्तियों को एक साथ चाय पिलाने के लिए तैयार होगा?)

प्रकाश ने कुमार, कुमार ने नरेन्द्र और नरेन्द्र ने फिर प्रकाश की ओर देखा। उनकी दृष्टि मिली। एक क्षण उलझी रहीं; इशारा था, मक्खी को उड़ाना चाहिए। कुमार ने बड़े प्यार से कहा, "हरीश भाई, तुम दफ़ा क्यों नहीं होते? हम सब बड़े काले मूड में हैं।"

हरीश ने उसे एक मोटी-सी गाली दी, परन्तु साथ चलता रहा। सहसा उसने कहा, "तुम सब आज उदास क्यों हो? न मिस होप की बातें हैं न प्रोफ़ेसर गुलजारसिंह का स्कैंडल—आखिर बात क्या है?"

प्रकाश ने अपनी भूरी मूँछों को सहलाया, फिर भवें उठाकर कहा, "चौक की दूसरी ओर महादेव तुम्हारा इन्तजार कर रहा था। उसके पास एक कविता है और दो व्यक्तियों की चाय के पैसे हैं। तुम जाते क्यों नहीं?"

इसी समय प्रोफेसर रणधीरसिंह ने उन्हें पीछे से आ लिया, "अरे भई, वह बहस वाली क्या बात थी? कहाँ भाग गये थे तुम लोग?" फिर जैसे उसने इन सबकी शिकायत भाँप कर कहा, "मैं तो यूँ ही उसके साथ भीतर चला गया था। उसे केवल एक कॉफ़ी का डिब्बा खरीदना था।"

चेहरे खिल उठे। उन पर लालिमा दौड़ गई। कुमार चहकने लगा, "हाँ भई रणधीर, बात यह थी कि सार्त्र के "साहित्य क्या है?"

नामक थीसेज में उसके दर्शन का प्रतिबिम्ब किस सीमा तक प्राप्त होता है······बहस यह थी······परन्तु यार अब बैठें कहाँ—बम्बई केफ़ेटेरिया तो पीछे रह गया।"

"लौट चलते हैं।" प्रकाश ने सम्मति दी।

रणधीरसिंह एक क्षण ठिठक गया। फिर उसने साफ़-साफ़ कहना ही उचित समझा, "वाह यार···पाँच रुपया तो कॉफ़ी के डिब्बे पर ही खर्च आ गये। अब मेरी जेब में केवल एक रुपया है ···· पाँच व्यक्तियों के लिए कम-से-कम सवा रुपया चाहिए—चार आने पर हैड! क्षमा करना······" उसने उन सबकी ओर क्षमा-प्रार्थी आँखों से देखा और एकदम जैसे कोई जरूरी काम याद आ गया हो। वह रुक गया। उसने बारी-बारी सबसे हाथ मिलाया और दाएँ हाथ की सड़क पर घूम गया।

"भाग साले!" अब कुमार को सख्त गुस्सा था। उसने हरीश को भिड़का। "कुत्ता कहीं का! हमारी चाय भी मारी गई। मरी हुई मक्खी की तरह चिपक कर रह गया है!"

"ऐंठते क्यों हो?" हरीश ने फिर उसे एक मोटी-सी गाली दी, "चाय का सवाल ही है न!" आओ मैं तुम्हें चाय पिलाता हूँ। मैं तो ग्रीन रेस्तराँ से खूब तृप्त होकर आया था······" और फिर उसने उनके स्तब्ध चेहरों से बे-नयाज होकर बड़े ही प्यारे ढंग में प्रकाश से कहा, "वह तुम्हारी वुडवर्ड की सायकोलोजी थी न? आज साढ़े बारह रुपये में उसके लिए एक ग्राहक फँस गया था!"

घंटाघर की चहल-पहल यौवन पर थी।

साढ़े छः हो गये हैं।

सूर्य घंटाघर की चोटी के पीछे कभी छुपता है, कभी दूसरी ओर से दिखाई दे जाता है। बाजार में घूमने वालों के झुंड-के-झुंड जी० टी० रोड पर थोड़ी दूर प्लाज़ा सिनेमा की ओर बढ़ चले हैं। पौने सात बजे पिक्चर शुरू होगी। उस समय तक लोग बाहर ठकर इन्तज़ार

करेंगे। सिर और टांगों की मालिश करवायेंगे। मूँगफली खायेंगे, चाय पियेंगे या फिर बैठे-बैठे सिनेमा के अनगिनत पोस्टरों का देखते रहेंगे। साढ़े छः हो गए हैं और बाजार में शापिंग समाप्त करने के बाद हस्पताल की नर्सें या मेडिकल कालेज की छात्राएँ सिनेमा की ओर आ रही हैं। पैदल, या रिक्शों में, उनकी रंग-बिरंगी साड़ियाँ, काली या ब्राऊन पिंडलियाँ, काले रेशमी बारीक तारों से कोमल बालों के बड़े-बड़े जूड़े, दूर से दिखाई पड़ जाते हैं। नर्सें कम मूल्य के कपड़ों में हैं। मेडिकल की छात्राएँ अधिक क़ीमती रेशमी साड़ियों में हैं—सेटरडे की ईवनिंग आफ़ है!" नौ बजे तक सिनेमा देखा जायेगा। जिनसे मिलने का वायदा है, वे पौने सात बजे तक टिकट खरीद करके इन्तज़ार कर रहे होंगे। आँखें चार होंगी। दो-दो से दो-दो आँखें मिलेंगी और टिकट को ऊँगलियों में दबाये कुछ सुसज्जित युवक गैलरी की सीढ़ियाँ चढ़ कर बाक्स में जा बैठेंगे। शनिवार-के-शनिवार—एक सप्ताह, वियोग का एक सप्ताह कितना लम्बा होता है। यह कोई उनके मन से पूछे, जिन्हें एक सप्ताह, पूरे एक-सौ अड़सठ घंटे एक-एक क्षण करके इस इन्तज़ार में व्यतीत करने पड़ते हैं कि कब नया शनिवार आये और वह अपने बालों और कपड़ों को सुगंधित करके, समस्त शरीर पर टैलकम पाऊडर की हल्की-हल्की तह जमा कर सिनेमा हॉल के वेटिंग रूम में जा बैठें और जब उनकी काली प्रेयसी रिक्शा से उतरे तो कलमुँहे प्रतिद्वन्द्वी की दृष्टि बचाकर वे उसे साथ लेकर बाक्स में घुस जायँ— यह कोई उनके दिल से पूछे कि एक सप्ताह कितना लम्बा होता है, एक सप्ताह के बाद तीन घंटे ही संयोग के लिए मिलते हैं, और······

और सभी छात्राएँ, सभी नर्सें हाइजीन का बड़ा ध्यान रखती हैं। "साहब लीजिए आप उन्हें होंठों पर चूम नहीं सकते। कहने लगी, डियर, लिप्स पर जर्म्ज होते हैं और यदि वे किस में ट्रांसफर हो जायें तो बीमारी लग जाती है! लानत है मेरे यार!" पृथा साहब कहते हैं।

—लानत है मेरे यार—ट्रावंकोर-कोचीन से छः वर्ष का कोर्स

पूरा करने के लिए पंजाब जैसे अनजाने देश में आई हुई क्रिश्चियन लड़की यदि इतना भी ध्यान न करें तो कब की बीमार हो जाएँ। यदि वे आपके हाथ को कमर के नीचे तक खिसक जाने दे तो पांच छः मास में ही नष्ट हो जायें। कमर से ऊपर सुरक्षित स्थान हैं, भय नहीं है, परन्तु नीचे ? और आप, और आप उन्हें दोष देते हैं कि पंद्रह बीस रुपये खर्च करने के बावजूद आपको वह सब कुछ नहीं मिलता, जिसके लिए आप सप्ताह-भर इन्तजार करते हैं।

हम भी गले का आपरेशन करवाने के लिए हस्पताल में प्रविष्ट हुए। अब ईश्वर की माया है कि हमारा रंग तनिक गोरा है, शरीर अच्छा है, आयु कम है और कपड़े अच्छे हैं और सिस्टर रोजलीन है कि हर पाँच मिनट के बाद, 'अब कैसा हाल है ?' पूछने के लिए आ रही है। सिस्टर ग्लैडिज है कि हर दो मिनट के बाद दृष्टि बचा कर चोरी-छिपे देख लेती है और होंठों में मुस्कराती है और टैम्परेचर लेते समय जब कलाई पकड़ती है तो एक बार झुरझुरी लेकर छोड़ देती है। धीरे से हँसती है और फिर पकड़ लेती है और रिस्टवाच के बजाय चेहरे की ओर देखती है। सिस्टर स्केट है कि तूफ़ान की तरह आती है। बैड के पास आकर चादर की सिलवटें दूर करती है और अत्यन्त कठोर वाणी में सिस्टर सुष्मा की ओर देखते हुए कहती है, "आपको दवाई दी ?" और फिर जब इस ओर देखती है तो चेहरे की कठोरता एक क्षण के लाखवें भाग में यूँ कोमलता और प्यार में परिवर्तित हो जाती है जैसे किसी ने स्विच दबा दिया हो और कहती है, "आपके लिए अखबार का 'मैगजीन सेक्शन ला दूँ" और स्वीकारात्मक स्वर प्राप्त होने पर एक बार हाथ पकड़ कर कलाई में नब्ज देखती है, कुछ टटोलती है, "आज आपकी पल्स बहुत फ़ास्ट है !" और यदि हम प्रत्युत्तर में तनिक साहस से काम लेकर यह कह देते हैं, "आपके टच के बाद हो गई है," सिस्टर ! तो वह हँसी से लोट-पोट हो जाती है। सिस्टर सोस्मा जो टेबल पर खड़ी दवाई तैयार कर रही होती है, एक बार कांप-सी जाती

है। उसके मासूम बचगाना चेहरे पर एक क्षण के लिए लालिमा की एक लहर-सी दौड़ जाती है। हम जानते हैं कि यदि यह बात हम सोस्मा से कह दें तो वह एक बार जोर से कांपे और दूसरी बार बेसुध होकर गिर पड़े। अरनाकलम से आई हुई पंद्रह वर्ष की बच्ची, इस अपरिचित वातावरण में भयभीत हरिणी की भाँति रहती है, सबसे डरती है, सबकी आज्ञा मानती है और सीनियर सिस्टर से तो यूँ डरती है कि······

और अब यह हमारा दोष बिल्कुल नहीं था कि नाइट ड्यूटी पर एक बार सिस्टर टोरने हमारे बैड पर आकर बैठ गई और जब हम जाग उठे तो हमारा हाथ अपने हाथों में लेकर सहलाने लगी और फिर उठाकर अपने कपोलों से स्पर्श करने लगी। हम भी मानव थे और रात्रि की कालिमा में, वार्ड की एक लाइट हरी रोशनी में उस श्याम, नमकीन सौन्दर्य से इतने प्रभावित हो गये कि हमने उसे लिपटा लिया और कमर से ऊपर सुरक्षित स्थानों की सैर करते रहे और एक-दो घंटे लिपटाने के बाद जब थक गये और ठंडे से होने लगे तो सिस्टर टोरने ने एक बार सब हाईजीयनिक बातों की उपेक्षा करके होंठों को चूम-चूम कर दिया और ढीली हो गई और थक गई······

"नर्सों का क्या है ?" वार्ड में आया हुआ नया नवयुवक रोगी मदन कहता है, "ड्यूटी के समय में सिस्टर्ज़ और मौज के समय कज़िन !"

और हम सिस्टर टोरने से आधा झूठा, आधा सच्चा प्यार बढ़ा कर जब हस्पताल से डिस्चार्ज होकर आ गये तो शनिवार की यूँ बाट जोहने लगे जैसे वह हमारी मुक्ति का दिन है। हमने भी उसी तरह कपड़ों और बालों को यू डी० क्लोन में बसाया। उसी प्रकार ही शरीर पर टेलकम पाऊडर की हल्की-सी तह लगाई। दस-दस के दो नोट जेब में डाले और साढ़े छः से भी पंद्रह मिनट पूर्व सिनेमा हाल पहुँच गये। एक बाक्स बुक करवाया और रिक्शों से उतरती हुई रंग-बिरंगी साड़ियों

और श्यामल पिंडलियों, ब्राऊन भुजाओं और काले रेशम की तारों-जैसे बारीक बालों के जूड़ों में से कज़न टोरने को खोजने लगे—वह आई और हम बाहर खड़े सैंकड़ों प्रतिद्वन्द्वियों की दृष्टि बचाकर अपनी काली प्रेयसी को लिए बाक्स में घुस गये। अब पेटिंग कीजिये, या किसिंग, हाथ कमर से ऊपर रहना चाहिए—परिणाम स्पष्ट है, हम प्यास की तीव्रता को दुगना करके घर पहुँचे। आधी रात जागते रहे और किसी-न-किसी तरह छुटकारा हुआ तो नींद आई।

इस बीच में सिस्टर टोरने से मिलने एक बार हस्पताल गये। उद्देश्य गले का दो बार टैस्ट था। देखा, नया नवयुवक रोगी मोहन, बैड पर लेटा है और सिस्टर टोरने पास खड़ी डबल रोटी को दूध में भिगो-भिगो कर दे रही है और हँस रही है और स्वयं उसके मुँह में ग्रास डालते हुए कपोलों को चूम रही है—"और नर्सों का क्या है? ड्यूटी के समय में सिस्टर्ज़ और मौज के समय कज़िन!" एक शनिवार और बीता। हमने कज़न टोरने से शिकायत की तो वह हँस पड़ी, "डियर तुम भी स्ट्रेंज टाक करता है। हमें हर पेशेन्ट से अच्छा ट्रीटमेंट और बिवेहियर रखने का आर्डर है!" हम संतुष्ट हो गये। इस बीच में एक बार फिर हस्पताल गये। ई० एन० टी० वार्ड में सिस्टर बकेट थी। वह हमें ड्रेसिंग रूम में ले गई और टेस्ट करते हुए वह गोद में ही बैठ गई। हम तड़प कर उठ खड़े हुए। कज़न टोरने से वफ़ादारी के विचार ने हमें सिस्टर बकेट का निमन्त्रण स्वीकार करने से इनकार करने पर विवश कर दिया। टोरने मिली तो उसने इस शनि को आने में अक्षमता प्रकट की। जैसे-तैसे वापस लौट आये परन्तु ६: बजते-बजते हम उसी तरह नये वाले लेल सिनेमा हाल में जा पहुँचे। घूमते रहे। मोहन को देखा वह भी शायद पिक्चर देखने आया था। एक रिक्शे से श्यामल पिंडलियाँ, हरी साड़ी और और ब्राऊन भुजाएँ उतरीं तो हमने देखा कि मोहन आगे बढ़ा और कज़न टोरने को साथ लेकर

गैलरी की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा—बड़ा धक्का लगा। बड़ा शोक हुआ कि क्या कहें परन्तु ·····

परन्तु जब हम उस घटना को बिल्कुल भूल गये और कई शनिवार चुपचाप व्यतीत हो गये तो एक दिन मोहन बाजार में मिल गया। हमने देखा तो रुक गये। एक शब्द कहे बिना रोजा होटल चले गये। बैठते ही मोहन ने कहा, "टोरने आजकल एक क्रिश्चियन छोकरे चन्दु के साथ जाने लगी है!"

हम हँस पड़े। बहुत देर तक हँसते रहे "तो······" हमने कहा, "ऐ, रकीबे-रूसवाह! हमारी स्याह-फ़ाम प्रेयसी चन्दू के साथ भाग गई है!!"

"परन्तु······" उसने गम्भीरतापूर्वक कहा, "मैं तुम्हारी भाँति कच्चा नहीं था। मैंने एक रात उसे अपने घर रखा है!"

मोहन कच्चा था या नहीं। हम धोखे में आये या हमने पचास-साठ गँवा कर एक प्रयोग किया। बहरहाल आज शनिवार है और वियोग का एक दीर्घ सप्ताह, पूरे १६८ घंटे व्यतीत करने के बाद प्रेमी अपनी काली प्रेयसियों की बाट जोहते-जोहते सिनेमा हाल के बाहर टहल रहे हैं। अपने बालों और कपड़ों पर यू० डी० क्लोन या ईवनिंग इन पेरिस की सुगंधि बसाकर, सारे शरीर पर हिमालय बुके की हलकी-सी तह जमा कर वे इन्तजार में मग्न हैं। नई फ़िल्मों के अनगिनत पोस्टर पढ़ रहे हैं। आईसक्रीम खा रहे हैं। चाय पी रहे हैं।

कलमुँहे प्रतिद्वन्द्वी की काली-कलूटी प्रेयसी जो आज चन्दू के साथ भागी है तो कल फिर हमारे साथ भाग आयेगी। परसों फिर कलमुँहे प्रतिद्वन्द्वी के पास है तो उससे अगले दिन······परन्तु हाईजीन बड़ी अच्छी वस्तु है। "साहिब, लीजिए, आप उन्हें होंठों पर नहीं चूम सकते कहने लगी, 'डीयरी, लिप्स पर जर्म होते हैं जो 'किस' करने से ट्रांसफर हो जाते हैं! पृथा साहिब कहते हैं।

पृथा साहिब एक ही काँइया हैं। अनुभव से उन्होंने हजारों शिक्षाएं

प्राप्त की हैं। उनमें एक शिक्षा यह है कि पंद्रह-बीस रुपये खर्च करने हों तो पिशावर होटल पर भी किसी को बुलवाया जा सकता है। पंद्रह रुपयों में तो बन्द बोतल-सी मादक स्त्री मिल सकती है। सिनेमा के बाक्स और सोडे की बोतलों पर पन्द्रह रुपये खर्च करने के बाद आप तीन घंटे नदी के किनारे बैठे रहें और प्यास न बुझा सकें, यह अत्याचार है, सर्वथा अन्याय है—इसलिए पृथा साहिब इस प्रकार की ऐयाशी के समर्थक नहीं।

दोपहर से पिशावर होटल के एक केबिन में बैठ-बैठकर उनका जी उकता गया है। अभी-अभी जितेन्द्र आया है। बीयर की चौथी बोतल समाप्त हो चुकी थी, इसलिए बैरे को दो और मंगवाने के लिए कहा गया है। पृथा साहिब और जितेन्द्र ऊपर सीढ़ियाँ चढ़कर रिहायशी कमरे में जा रहे हैं। बीयर पीते-पीते जब बिल्कुल बोर हो जाएंगे तो ह्विस्की मंगवाने का आर्डर और जब नशा हो जाएगा और जितेन्द्र केवल दो पेग पीने के बाद झूमने लगेगा और पृथा साहिब के बचकाना चेहरे पर उगी हुई बल्कि जबरदस्ती चिपकाई हुई मूंछें हिलने लगेंगी और नीचे रेडियोग्राम पर प्रसिद्ध ग़ज़ल बजने लगेगी। "आज मिलने का वायदा है······वायदा है!"

तो नई वस्तु का आर्डर दिया जायेगा। पाशो आयेगी गोरे रंग और मांसल शरीर वाली पाशो जो केवल पंद्रह रुपये लेती है और जिसे पृथा साहिब-जैसे आधे पुरुष आधे बच्चे को प्रसन्न करने का ढंग खूब आता है—वह उन्हें इतने पेग पिलाएगी कि जितेन्द्र आंखें बंद करके सोफे पर लुढ़क जायेगा। पृथा साहिब की आंखें बंद होने लगेंगी। वह उन्हें अपनी चौड़ी चकली गोद में बिठा लेगी—मां की तरह छाती से लगा लेगी। पृथा साहिब और जितेन्द्र······दो बच्चे जो पाशो की गोद में, मां की गोद की ऊष्मा अनुभव करके अपने 'आडीप्स' को संतुष्ट करते हैं, पाशो को बहुत पंसद करते हैं। इस तरह नौ बज जायेंगे। बैरा एक-दो ऊपर आकर बर्फ़ और सोडे की बोतलें रख

जायगा। फिर कुछ फ्रूट ले आयेगा; फिर पाशो की दृष्टि का संकेत पाकर एक बार मेज़ साफ़ करते हुए धीरे से कहेगा, "पृथा साहिब, नौ बज गये हैं।"

पाशो का घर वाला काम से साढ़े नौ बजे लौटता है। उसके आने तक पाशो को घर पहुँच जाना चाहिए। वह धन्धा करने वाली स्त्री नहीं है। एक अच्छी पत्नी भी है और स्नेहमयी माँ भी। उसका भाई टी० बी० सेनीटोरियम में है। उसे डेढ़-सौ रुपये मासिक भेजना पड़ता है। एक भाई, जिसे पाशो ने माँ की तरह पाला था, आज क्षय रोग से ग्रस्त है—डेढ़-सौ रुपया मासिक अर्जन करने के लिए पाशो केवल पिशावर होटल पर आती है और वह भी केवल पृथा साहिब और उनके मित्रों के लिए। विभिन्न कुंठाओं के मारे हुए इन पुरुष रूपी बच्चों को संतुष्टि प्रदान करने में उसे वह आनन्द आता है जो अपने छोटे बच्चे को दूध पिलाने में। वह इन्हें दुलारती है, चूमती है। अपने चौड़े-चिकने स्वस्थ और मांसल वक्ष से लिपटाती है और पृथा साहब कहते हैं—

"पाशो-जैसी सेक्सी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। पाशो एक लाख रुपये में भी महंगी है!"

पाशो, या प्रकाशवती वाक़ई एक लाख में भी महंगी है। अपने पति के आने पर रोटी तैयार करके सामने रखते हुए वह दिन-भर के काम की कटु बातें सुनकर अपने पति का बोझ हल्का करती है। पृथा साहिब और उनके मित्रों की ज्यादतियों से थके हुए, दुखते हुए अंगों के साथ पति के पाँव दबाती है। बच्चे को दूध पिलाकर सुला देती है। लाइट बुझाने के बाद वह शरीर के दुखते दागों, दांतों के चिन्हों और लाल, नीले चोट लगे कन्धों और कपोलों पर क्रीम मलती है और फिर जब पति के बिस्तर में घुस जाती है और थकान से अर्धमृत पति के शरीर के साथ लिपट जाती है तो उसे जीवन की सब कटुता भूल जाती है। यहाँ उसे माँ नहीं बनना पड़ता। मर्दनुमा बच्चों से पाला नहीं पड़ता।

उसका पति एक शीतल वासना-भरे श्वास के साथ उसके शरीर पर अधिकार करता है तो वह आपाद-मस्तक एक भारतीय स्त्री बन जाती है। उसका पति पूरा पुरुष है और जब वह थक कर उसे छोड़ देता है तो वह बच्चों की-सी गहरी नींद सो जाती है। निश्चिन्तता और सुरक्षापूर्ण गहरी नींद।

सुबह उसे अपने भाई को डेढ़-सौ रुपये का मनीआर्डर भेजना है!

उसके पति को कभी सन्देह तक भी नहीं हुआ कि रुपये उसके मायके से लाये हुए अपने नहीं हैं। वह यही समझता है कि अब भी उसके पास डेढ़-दो हजार रुपया है जो वह भाई के लिए मायके का सामान बेच कर लाई थी। मुहल्ले में किसी को कुछ पता नहीं, पाशो एक देवी है—पृथा साहित्र क्या जानें, प्रकाशवती तो एक लाख रुपये में भी महंगी है! माँ के मूल्य का अनुमान कौन लगा सकता है???

सात बज गये हैं। सांझ ठुमक-ठुमक कर चलती हुई आगे बढ़ रही है। घंटाघर की एक घड़ी ने सात बजाने आरम्भ किये हैं। आवाज को इतना समीप पाकर सुइयों पर बैठे कबूतर पर फड़फड़ा कर उड़ चले हैं।

सात बजते ही भारत-पब्लिशर्ज की बाहर वाली दुकान में गुरचरण सिंह उठा है। उसने छोटी टाइपराइटर को धकेल कर काऊंटर पर गूँदूर कर दिया है जैसे कोई देव-सरीखा आदमी किसी कमजोर छोटी-सी स्त्री के साथ बलात्कार करने के बाद अपने इस प्रयोग से खिन्न होकर उसे चिचौड़ी हुई हड्डी की भांति हाथ से दूर धकेल दे। गुरचरणसिंह बाहर निकला है। उसने एक लम्बी भरपूर अंगड़ाई ली है, पाँव फैला दिये हैं। उसके घुटनों, उसकी कुहनियों, उसके शरीर के हर जोड़ से टक-टक की आवाजें निकली हैं। उसने अंगड़ाई ली है और बायें हाथ की उंगलियों को दाहिने हाथ में लेकर मरोड़ने लगा है। सारे दिन की उदासी और थकान, गुरमुखसिंह की झिड़कियों, धूल, लू और गर्मी को उसने अपनी अंगड़ाई से चौक घंटाघर में झाड़ दिया है। स्वयं ताजा दम और ताजा मुख वह घर जाने योग्य हो गया है—गुरचरणसिंह को

एक दृष्टि देखने पर एक अच्छे पले हुए पशु का ध्यान आता है, जो काम समाप्त होने के बाद सिर झाड़ कर, नथने फुला कर, अपने आराम करने के समय की घोषणा करता है।

दुकान से निकलते ही उसकी दृष्टि सामने गोल चक्कर में पंडित नेहरू की तसवीर वाले बोर्ड पर गई है। उसकी आँखों से चिंगारियाँ निकलने लगी हैं। नथनों से भाप उड़ने लगी है। क्रोध से उसका रोम-रोम काँपने लगा है। पंडित नेहरू की तसवीर वाले बोर्ड पर किसी अशिक्षित, गँवार और मूर्ख दातुन वाली ने अपने बच्चों के गंदे कपड़े लटका दिये हैं। एक क्षण के लिए गुरचरणसिंह ने दाएँ-बाएँ देखा है। तोड़ने, नष्ट करने या उसे कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती तो। वह भारी-भारी पग रखता हुआ गोल चक्कर तक गया है। एक ही छलांग में ऊपर पहुँचा है। गंदे कपड़े उतार कर उसने सड़क पर फेंक दिये हैं और ऊँची-ऊँची आवाज में उन्हें डांट रहा है।

"बड़े मूर्ख हो तुम। शर्म नहीं आती। हज़ार बार कहा है कि इस बोर्ड पर कपड़े या चारपाई न लटकाया करो। हज़ार बार कहा है परन्तु हरामजादियाँ गँवार हैं, कुछ समझती ही नहीं—अब के अगर ऐसा हुआ तो टांगें तोड़ दूँगा।" वह बड़े प्यार और सम्मान से पंडित नेहरू के चेहरे पर हाथ फेर रहा है। पंडित नेहरू के कपोल सहला रहा है। टोपी यूँ ठीक कर रहा है जैसे वाक़ई सिर से खिसक गई हो।

रमापनी उसे देखकर मुँह छुपाए हुए हँस रही है। दोपहर को भी इसी सरदार ने रोका था। यह शायद रमापनी की ही कारस्तानी है। उसी ने पागल मर्जीनी के गन्दे कपड़े बिजली के खम्बे की चौकड़ी से उतार कर यहाँ लटका दिये हैं। यह शायद रमापनी की कारस्तानी है जो इस राक्षस-रूपी मानव के क्रोध को देखकर हँस रही है, मज़ा ले रही है।

अपने कपड़े यूँ सड़क पर फेंके हुए देखकर बूढ़ी मर्जीनी चीखने लगी है। विचित्र वाणी में कुछ कह रही है। शायद गालियाँ बक रही

है। साथ-ही-साथ कपड़े भी चुनती जा रही है। गुरचरणसिंह नीचे उतर कर फिर दुकान के सामने आ खड़ा हुआ है। अपनी पतलून की जेबों में दोनों हाथ डाले, पाँव दो फुट के अन्तर पर फैला कर वह निश्चल पहाड़ी की भांति खड़ा है। मर्जीनी हाथ फैला-फैलाकर अपनी बोली में उसे कोस रही है।

"बकने दो हरामजादी को...... बकने दो......" वह एक फीकी हँसी हँसता है और आस-पास के खड़े लोगों से कहता है।

परन्तु जब पूरे दस मिनट बीतने पर भी मर्जीनी की गति में कोई अन्तर नहीं आता तो गुरचरणसिंह का सब्र दम तोड़ देता है, "ऐ छोकरे ......" वह एक भील छोकरे को सम्बोधित करके कहता है, "इस बुढ़िया को चुप करवाओ, अन्यथा मैं सबका डेरा-डण्डा यहाँ से उखाड़ दूँगा!"

छोकरा कन्धे झटक कर चुप रहता है। सभी अपने कार्य में व्यस्त हैं। कभी-कभी एक आँख उठाकर मर्जीनी की ओर देख लेते हैं जो बराबर हाथ फैलाकर गालियाँ बके जा रही है। उसे चुप करने के लिए कहने का अर्थ यह है कि गालियों की दिशा अपनी ओर मोड़ने का निमन्त्रण दिया जाए। कोई कुछ नहीं कहता, सभी चुप हैं और रमापती है कि गुरचरणसिंह की ओर देखती है और हँसे जा रही है।

"चुप री......" एक पुरुष ने रमापती को डाँटा है।

रमापती की हँसी बन्द हो गई है। मर्जीनी की गति में कुछ कमी हुई है। उसकी गालियाँ अब बड़बड़ाहट में परिवर्तित हो गई हैं। जो कपड़े उसने इकट्ठे किये थे, फिर बढ़कर पंडित नेहरू के चित्र पर लटका दिये हैं।

"वहाँ नहीं, वहाँ नहीं" गुरचरणसिंह आगे बढ़ा है, "अरे......" उसने एक बूढ़े को सम्बोधित किया है, "तुम इस बुढ़िया को समझाते क्यों नहीं, यह जवाहरलाल नेहरू की तसवीर है। भारत के राजा

की······" उसे बुद्धिमानी सूझी है, "इस पर गन्दे कपड़े लटकाना इसका अपमान है !"

बूढ़े ने भी छोकरे की तरह कंधे झटका दिये हैं। कुछ लोग खड़े तमाशा देखने लगे हैं। गुरचरणसिंह का क्रोध अब दीनता की सीमा तक पहुँच गया है। यदि वह एक बार फिर कपड़े उतार कर फेंक देता है तो बूढ़ी की गालियाँ और कोसना निश्चित है। यदि कुछ नहीं करता तो देखने वालों की आँखों में मूर्ख बनता है। उसकी दशा उस सर्प-जैसी है जो छिपकली खा भी नहीं सकता, छोड़ भी नहीं सकता। उसे मुँह में लिए पागलों की भाँति आँखें घुमा रहा है—उसे एक और बात सूझी है। वह लम्बे-लम्बे डग भरता ट्रैफिक कान्स्टेबल तक गया है।

"श्रीमान् जी" उसने कहा है, "मैंने उन गँवार स्त्रियों को हजार बार रोका है कि पंडित नेहरू के बोर्ड पर गन्दे कपड़े लटका कर हमारे राष्ट्रीय नेता का अपमान न करें। हमारा रक्त खौलता है······"

"कहाँ, किधर······?" ट्रैफिक कान्स्टेबल बसों, रिक्शों और साइकलों के संसार से लौट कर चौंक उठा है।

"उधर सामने······आप तनिक पधार कर उन्हें डाँट दें !"

ट्रैफिक कान्स्टेबल चल पड़ा है। उसके पीछे तमाशा देखने वालों की भीड़ एकत्रित हो गई है। रेडक्रास की टिकटें बेचने वाला और उसके ग्राहक भी दिन-भर की एकरसता और बोरियत को एक क्षण के लिए बहलाने की इच्छा लेकर साथ चल पड़े हैं। एक पूरा जलूस बन गया है जिसका हीरो गुरचरणसिंह है।

गुरुचरणसिंह पक्का राष्ट्रवादी है। सिख राजनीति में हजार तूफ़ान आये। हजार बार आन्दोलनों ने पलटा खाया, परन्तु गुरचरणसिंह अपने स्थान पर अटल रहा। जमीबजुंबद न जुंबदगुल मुहम्मद ! यदि एक समय में कांग्रेस ने कट्टर हिन्दू आन्दोलन महापंजाब का दबे शब्दों में समर्थन किया तो गुरचरणसिंह पश्चिमी पाकिस्तान की एक इकाई का

प्रमाण देकर महापंजाब के पक्ष में कहता रहा। एक ऐसी सिख दुकान पर जिसका स्टाफ़ और मालिक कट्टर सिख थे, गुरचरणसिंह का साहस सराहनीय था। यदि कांग्रेस ने भाषा के आधार पर रीजनल फ़ार्मूला स्वीकार कर लिया, तो गुरचरणसिंह ने अपने पुराने विचार त्याग कर नई दिशा ग्रहण कर ली—गुरचरणसिंह, जो सुबह हर रोज़ कांग्रेस का दैनिक उर्दू पत्र पढ़ता है और फिर किसी एक सम्पादकीय को लेकर सारा दिन विवाद करता है। अख़बार का सम्पादकीय उसका राजनीतिक भोजन है। जब तक वह उसकी जुगाली न कर ले, दस-पन्द्रह व्यक्तियों से विवाद में, उसके पक्ष में टक्कर न ले ले, उसे वह पचाता नहीं।

गुरचरणसिंह पक्का राष्ट्रवादी है।

हरीश एक चुटकला सुनाया करता है। चिरंजीत की दुकान पर नियुक्ति से पूर्व गुरचरणसिंह ही हिन्दी-पुस्तकों का काम किया करता था। हिन्दी का थोड़ा-सा ज्ञान था और गांधीवाद के नाम की कोई पुस्तक हो, गुरचरणसिंह उसे सिर-आँखों से लगाकर रखा करता था और हर लायब्रेरी, हर स्कूल, हर कालिज, हर ग्राहक को बेचने का प्रयत्न किया करता था। चिरंजीत जब पहली बार आया तो उसने देखा कि यशपाल की हिन्दी-पुस्तक 'गांधीवाद की शव-परीक्षा'' की लगभग पचास प्रतियाँ दुकान में हैं। एक अहिंदी भाषी प्रान्त के दुकानदार के लिये एक ऐसी पुस्तक की पचास प्रतियाँ स्टाक में रखने का अर्थ यह था कि दुकानदार उस पुस्तक में विशेष रुचि रखता है। उसने देखा कि गुरचरणसिंह इस पुस्तक को हर लायब्रेरी में ठूँसने का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न कर रहा है। एक ही दिन में उसने दस स्कूल-लायब्रेरियों को एक-एक करके दस प्रतियाँ सप्लाई कीं। दूसरे-चौथे दिन जब बातों-ही-बातों में चिरंजीत को ज्ञात हुआ कि गुरचरणसिंह पक्का राष्ट्रवादी होने के अतिरिक्त अंधविश्वासी गाँधीवादी है तो उसे यह पहेली समझ में न आई। उसने गुरचरणसिंह से इस बारे में पूछा।

"अरे भाई विचित्र व्यक्ति हो……" गुरचरणसिंह ने उत्तर दिया, "यदि हम अपनी मर्जी की पुस्तकें सप्लाई न करेंगे तो क्या रूसी लिट्रेचर सप्लाई करेंगे ?

"परन्तु…… गुरचरणसिंह……" चिरंजीत ने और अधिक आश्चर्य-चकित होते हुए कहा, "यह पुस्तक तो गांधीवाद के विरुद्ध है—गांधीवाद का पोस्टमार्टम किया गया है इसमें !"

"क्या कहते हो ?" गुरचरणसिंह को अपने कानों पर विश्वास न आया। "शव परीक्षा……रूप-रेखा क्या दोनों का अर्थ एक नहीं होता ?"

गुरचरणसिंह को जो व्यथा हुई उसका अनुमान वही व्यक्ति कर सकता है जो पक्का देश-भक्त हो और अनजाने में ही अपनी किसी क्रिया से शत्रु के हाथ मजबूत करता रहा हो। उसने सिर पीट लिया परन्तु अब क्या हो सकता था।

× × ×

जलूस जाकर दातुन वालियों के समीप ठहर गया है। दो स्त्रियों ने उठकर शीघ्र-शीघ्र कपड़े उतार लिये हैं। वर्दीधारी सरकारी व्यक्तियों से डर उनकी घुट्टी में पड़ा हुआ है। एक शब्द कहे बिना उन्होंने कपड़े उतार लिये और हाथ जोड़ दिये—ट्रैफिक कान्स्टेबल वापिस चला गया है। गुरचरणसिंह विजेता की भाँति अकड़ता हुआ गोल चक्कर की पटरी से उतरा है। जेबों में दोनों हाथ ठूँस कर उस तरह टांगें चौड़ी किये वह जमकर खड़ा हो गया है। उसके मैले-कुचैले पीले दांत बार-बार चमक उठते हैं। यूं लगता है जैसे पशु अभी-अभी शिकार मार कर तृप्त होकर आ रहा है।

× × ×

समय बीतता जा रहा है। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, रौनक बढ़ती ही जाती है। मिसेज बावा सौदा-सलफ़ ख़रीद कर एक नाजुक-सी टोकरी बाईं कलाई में लटकाये लौट रही है। गुजरते हुए दो शराबी जाट उसे देखकर स्तम्भित रह गये हैं। उनकी आँखें इतनी सुन्दर और

इतनी वासनापूर्ण स्त्री को देखकर आश्चर्य से चौड़ी हो गई हैं। मिसिज़ बावा गुज़र गई है तो एक ने दूसरे की ओर देखकर आँख दबाई हैं और लहक कर गाया है—

तेरी हिक ते मलाइयाँ आइयां नी कच्चा दुध पीन वालिये !···ओए !"

आस-पास गुज़रते हुए लोग कहकहा मार कर हँस पड़े हैं। सड़क बीच खड़े जाट ने लहक कर एक और बोली गाई है—

"यारा तेरा घुट भरलां, तैनू देखयां सबरन आव !······ओए !"

भीड़ इकट्ठी हो रही है परन्तु स्वस्थ, युवा और शराबी जाटों को कोई चिन्ता नहीं। वे बीच सड़क खड़े हैं। उन्होंने आंखें मूंद रखी हैं। पहले ने फिर अपनी बारी पर एक और बोली गाई है

"ढल गए गर्दन दे मूंगे, लिस्सी हो गई तूं बचनो !···हाय हाय !"

जाट को अपनी पत्नी याद आ गई है, जो कभी जवान थी, जिस का रंग यूँ चमकता था, जैसे मैले गदले पानी से सूरज झाँक रहा हो। दुनिया की चिन्ता ने जिसकी गर्दन के मूंगे ढीले कर दिये हैं और जो कमजोर हो गई है—मिसेज बावा का स्वास्थ्य, उसका शरीर, उसका रंग-रूप देखकर जाट को अपनी पत्नी का ध्यान आ गया है। उसने काँपती हुई दर्द-भरी वाणी में एक और बोली गाई है—

"मारया गरीबियाँ ने······बचनों दा रंग उड़गा !"

उसकी आवाज़ दर्द से बोझिल है। उसके दर्द को सभी लोगों ने महसूस किया है। कई आँखें आँसुओं से छलछला आई हैं।

"रस्ता छोड़ो, रस्ता छोड़ो !" पीछे खड़े दो-तीन रिक्शों वाले चिल्ला रहे हैं—एक मोटर का हॉर्न बज रहा है। ट्रैफिक कान्स्टेबल ने मुड़कर देखा है। ऐन अपनी बगल में इतनी भीड़ देखकर उसे महसूस हुआ है, जैसे दंगा हो गया हो। वह सीटी-पर-सीटी बजा रहा है। जाटों ने आँखें खोल दी हैं। वो इस जागते स्वप्न के जादू से सावधान हो गए हैं। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं आ रहा। अपनी बचनो

के सौन्दर्य की बर्बादी पर शोक करने वाला जाट वाक़ई रोने लगा है। आंसू उसकी उलझी हुई दाढ़ी में अटक रहे हैं। दूसरे ने उसे बाजू से पकड़कर सड़क के किनारे कर लिया है। दोनों दातूनवालियों से तनिक हटकर पटरी पर बैठ गये हैं। भीड़ बिखरने लगी है। अब केवल कुछ लड़के ही खड़े हैं जो टुकर-टुकर दोनों जाटों की ओर देख रहे हैं। एक ने बग़ल से आधी बोतल निकाली है और दो घूँट भरकर दूसरे को पकड़ा दी है—संसार के सभी ग़म बोतल के बन्द पानी में डूब रहे हैं—"जहाँ फकीरों को घेर लेती है नाग हां गर्दिश जमाना, वहाँ से रास्ता जरूर जाता है एक सुये शराब खाना!"

मिसेज हरदत्तसिंह भी बाजार से लौट रही है। उसका पति उसके साथ नहीं है। उसके चेहरे पर न जाने क्यों रक्त की वास्तविक लालिमा झलकने लगी है। रवीन्द्र कुछ पग छोड़कर उसके पीछे-पीछे चल रहा है। उसकी दृष्टि जैसे न दिखाई देने वाले तार से मिसेज हरदत्तसिंह की गोरी माँसल गर्दन और सुनहरी बालों के छत्ते से बंधी है। उसका चेहरा लाल है। वह हिप्नाटाइज्ड दिखाई पड़ता है। बीस वर्ष का स्वस्थ नवयुवक चालीस वर्ष की स्त्री के वश में आकर सोच रहा है "मैंने इसे वश में कर लिया, मैंने इसे वश में कर लिया!" बाजार में शायद कुछ बातें हुई हैं। शायद मिसेज हरदत्तसिंह ने रवीन्द्र को अपने छोटे आठ वर्षीय बच्चे को पढ़ाने के लिए ट्यूटर रख लिया है। बहरहाल कुछ-न-कुछ हुआ अवश्य है। रवीन्द्र प्रसन्न है, अत्यन्त प्रसन्न है। मिसेज हरदत्तसिंह प्रसन्न है, अत्यन्त प्रसन्न है। उसकी आयु से दस वर्ष और कम हो गये हैं "इस संसार में केवल स्त्री के ही नहीं, पुरुष के शरीर की कदर भी बढ़ सकती है" पागल रवीन्द्र यह बात समझ गया है।

सूरज बिल्कुल छिप गया है। एक हल्का सा अँधकार फ़ैलने लगा है। एक-एक करके बल्ब और ट्यूबें जलनी प्रारम्भ हो गई हैं। चौक घंटाघर चकाचौंध का दृश्य प्रस्तुत करने लगा है। अन्धकार ने अपने

बड़े-बड़े पंख फैला दिये हैं। साईकिलों और रिक्शों और मोटरों और ट्रकों, सबकी छोटी बड़ी बत्तियाँ चौक के समुद्र में तैरती फिर रही हैं। साढ़े सात बजे हैं। ट्रैफिक कान्स्टेबल प्रत्येक दो घंटे के बाद बदल जाता है। नया सिपाही आ गया है। उसने सीटी बजाकर दो नवयुवकों को खड़ा कर लिया है, जो एक ही साइकल पर बिना लाइट के जा रहे थे।

"व्हाट इज दी मैटर......व्हाट डू यू वांट ?" एक लड़के ने रोब डालने के लिए अंग्रेजी में बात की है।

संतरी पादशाह चिढ़ गया है। चालान न करने की इच्छा होते हुए भी वह अब अवश्य चालान करेगा। उसने कापी-पेंसिल निकाल ली है। "अपना नाम बताइये बाबू साहब और पंजाबी में बात कीजिये। अंग्रेज हिन्दुस्तान से चले गये।" वह कह रहा है।

चालान हो गया और जरूर होगा। यदि बाबू इतना घमन्डी न होता और पहले ही मिन्नत कर लेता तो सिपाही इतनी कठोरता से व्यवहार न करता, परन्तु लड़के मूर्ख दिखाई पड़ते हैं। वे सिपाही से उलझ रहे हैं। ज्यादा रोब डालने के लिए अंग्रेजी में बातें कर रहे हैं। ट्रैफिक कान्स्टेबल ने साइकिल लेकर ऊपर रेडक्रास के तम्बू के पास खड़ी करदी है। "बाबू साहब, जाइये जमानत लेकर आइये और साइ-कल ले जाइए। बहुतियाँ अंग्रेजियाँ सानूं नहीं आऊंदिया......"

भीड़ फिर इकट्ठी हो गई है। लोग तमाशा देख रहे हैं "भाग जाओ ......दौड़ो......क्या तमाशा है ?" सिपाही लोगों से कह रहा है।

'आई,ल टीच यू ए लैसन......आईल सी यू......" पराजय और दीनता से रूंका सा होकर एक बाबू धमकी देने पर उतर आया है।

"बकवास न करो और जाकर जमानत ले आओ अन्यथा मैं सरकारी ड्यूटी में धर लूंगा !" सिपाही को क्रोध आ गया है। उसने अधिक गर्म होने वाले लड़के को बाजू से पकड़ कर धकेल दिया है। कुछ लोगों ने इस बात का बुरा मनाया है। एक-दो आदमी बड़बड़ा रहे हैं।

सिपाही ने सीटी बजाकर दूर साइकिल पर जाते हुए दूसरे ट्रैफ़िक कान्स्टेबल को बुला लिया है। "चरनया, यह बाबू साहब जरा ज्यादा अंग्रेजी बोलते हैं। कहते हैं, तुम्हें पाठ पढ़ा दूंगा, तुम्हें देख लूंगा। इन्हें चौधरी साहिब के पास कोतवाली ले जाओ ······"

अब लड़कों को होश आया है। दूसरा लड़का मिन्नत कर रहा है। "अजी जाने दीजिये हवालदार साहिब ! यह तो मूर्ख है। यूं ही गर्म हो गया है। आप इतनी कठोरता न कीजिये······"

दूसरा लड़का चुप है। "नहीं, नहीं" पहले सिपाही ने इनकार में सिर हिलाया है। "उसने सरकारी ड्यूटी में रुकावट डाली है और रोकने पर धमकी दी है। आप बेशक जमानत के लिए किसी को कोतवाली बुला लें, वहाँ तक तो चलना ही पड़ेगा !"

अँधेरा बड़ा प्यारा है। अँधेरे में चेहरे धुंधले पड़ जाते हैं और ऐसा काम करने में भी शर्म महसूस नहीं होती, जो दिन के उजाले में करना असम्भव होता है—एक नया विवाहित जोड़ा कचहरी रोड से होता हुआ चौक तक आ पहुँचा है। पति-पत्नी दोनों सुन्दर हैं और जवान हैं। प्यार की नवीनता और तीव्रता ने उन्हें एक-दूसरे के हाथ-में-हाथ डालने पर विवश कर दिया है। वे एक-दूसरे में खोये हुए हैं। इस समय उनकी सारी आत्मा, सारा शरीर, सारा स्नेह सिमट कर उन दो उँगलियों में समा गया है जिससे वे एक-दूसरे को थामे हुए हैं। संसार के बहाव से चिन्तामुक्त और आस-पास के वातावरण से बेपरवाह, वे बाज़ार की दिशा में बढ़ रहे हैं। उन्हें देखकर गोल चक्कर के बिल्कुल बीच में गूंगे मालिशिये की कुर्सी पर बैठकर चम्पी करवाते कुमार ने स्वयं से कहा है—

"मैं जब भी प्यार करने वाली दो निश्छल आत्माओं को देखता हूँ, जीवन के प्रति मेरा विश्वास फिर से जीवि हो उठता है !'

गूंगा मालिशिया कार्यकुशल कलाकार है। अपने काम में एक्सपर्ट है। शाम के साढ़े सात बजते ही वह अपनी फोल्डिंग चेयर लाकर चौक

के गोल चक्कर के बिल्कुल मध्य में ला रखता है। मालिश के शौकीन पहले ही उसका इन्तजार कर रहे होते हैं। उसके कुर्सी रखते ही एक ग्राहक आगे बढ़कर उस पर बैठ जाता है। पिंडलियों की मालिश तीन आने, सिर की चार आने और सारे शरीर की एक रुपया। गूंगा मुंह से एक शब्द भी नहीं कहता। उसका रेट सभी को ज्ञात है। वह कभी झगड़ा नहीं करता। कार्य अत्यन्त परिश्रम से करता है। शहर के मालिश करने वाले आधे से अधिक लड़के उसी के सिखाए हुए हैं। उसका शिष्य होना, मालिश वालों की बिरादरी में गर्व की बात समझी जाती है। वह हर ऐरे-गैरे को अपना शिष्य बनाता भी नहीं। जब उसे विश्वास हो जाये कि लड़का मालिश के पेशे के विषय में गम्भीर और ईमानदार है तो वह उसे अपने शिष्य-मंडल में स्वीकार कर लेता है। नये शिष्य को लट्ठे की चादर और एक रुपया लाना पड़ता है। फिर उसे पहला पाठ पढ़ाया जाता है। चार दिन की साधना के बाद गूंगा उस्ताद स्वयं उससे सिर, पिंडलियों और शरीर की मालिश करवाता है। यदि लड़का परीक्षा में सफल हो तो उसे शाबाशी देकर काम करने की खुली छुट्टी दे दी जाती है—गूंगे उस्ताद के शिष्य-मंडल का कोई लड़का कम रेट पर मालिश नहीं करेगा। किसी दूसरे लड़के का ग्राहक नहीं फुसलायेगा। गुप्तांगों और जननेन्द्रियों की मालिश करने से इनकार कर देगा। ट्रेड यूनियनिज़्म की भावना उनमें उसी दिन से फूंकी जाती है जिस दिन वह एक रुपया और चादर लाकर, उस्ताद के सम्मुख घुटने टेक कर शिष्य बनते हैं।

गूंगा मालिशिया एक जीवित बिरादरी का नेता है। इस बिरादरी में झगड़े की कोई गुंजाइश नहीं। मारपीट तक बात कभी नहीं पहुँचती, झगड़ा हो भी तो वह तत्काल निर्णय दे देता है। उसका निर्णय सभी को स्वीकार्य होता है। एतराज और अपील का प्रश्न ही नहीं! गूंगा मालिशिया एक जीवित बिरादरी का मार्ग-प्रदर्शक है!

× × ×

मदन अपनी पत्रिकाएं सिमेटने लगा है। आठ बजे से पहले-पहले वह यहाँ से उठ जाता है। सुबह पाँच बजे से रात के आठ बजे तक पन्द्रह घंटे होते हैं। पन्द्रह घंटे की दुकानदारी बड़ी चीज है। इसलिए वह पत्रिकाएं सिमेट रहा है। "मदन, जरा ठहरना, जरा ठहरना, ओए मदन!" दूर से आवाज देते हुए बाबू नन्दलाल आ रहे हैं। "ठहर भाई जरा......आठ एन्ट्री फ़ार्म तो दे जाओ, फिर उठाना अपनी दुकानदारी—आज अन्तिम दिन है, पहले जो सोलह हल भेजे हैं, उन सब में एक कम्बीनेशन गलत भरा गया है!"

"परन्तु बाबू जी......" मदन कहता है "आठ तो बजने वाले हैं, आप भरेंगे कब और पोस्ट कब करेंगे?"

"तू इसकी चिन्ता मतकर......एण्ट्री फार्म दे जल्दी से। आर० एम० एस० के बेंच पर बैठकर भर लूंगा और लेट फीस के साथ नौ बजे तक चिट्ठियाँ पोस्ट हो सकती हैं। परसों तक दिल्ली पहुंच जानी चाहिएं और कल इतवार है! ला, जल्दी कर!"

मदन ने एण्ट्री फार्म दे दिये हैं। पोस्टल आर्डर बाबू नंदलाल ने पहले ही ले रखे हैं। एण्ट्री फार्म लेकर वे एक टांग पर लंगड़ाते हुए स्टेशन की तरफ भागे जा रहे हैं। थोड़ी दूर चल कर वे फिर लौट आते हैं। "अरे एक कूपन भी! जल्दी, वीकली से काट करके, यह ले पैसे!"

मदन ने कूपन भी दे दिया है। बाबू नंदलाल अब रात के नौ बजे तक पसीना झटक-झटककर एक बेंच पर बैठे हुए एण्ट्री फार्म भरेंगे और फिर लेट फीस के साथ अपना लिफाफा पोस्ट करेंगे। आठ नई एन्ट्रीज—सोलह पहले भेज चुके हैं—और......और इधर बाबू नंदलाल की पत्नी है कि रोज झगड़ा करती है, "कृष्णा जवान हो गई है। अच्छे बाप हो, घर की भी चिन्ता नहीं तुम्हें! कोई अच्छा-सा लड़का तलाश करो!"

बाबू नंदलाल को विश्वास है कि उनका पहला इनाम अवश्य निकलेगा। हर बार जब वह क्रास वर्ड की एन्ट्रीज भेजते हैं, पहले इनाम

की उम्मीद रखकर घर का बजट बनाना शुरू कर देते हैं। पहला इनाम चालीस हजार रुपये का है। यदि चार आल करेक्ट भी हो जाएं तो दस हजार रुपये निश्चित हैं। सबसे पहले कृष्णा की शादी—पांच हजार खर्च—फिर घर की चार पुरानी किश्तें, दो हजार का खर्च—एक रेडियो, एक टाइप राइटर और एक नई साईकल" यह सब वस्तुएं तो घर की आवश्यकताओं में गिनी जा सकती हैं।" बाबू नंदलाल फ़िजूल खर्ची के दोष से बचने के लिए राह देते हैं—और उनकी पत्नी है कि उसे विश्वास ही नहीं आता। पुराने विचारों की है। कहती है "आप की दो-सौ रुपये तनख्वाह है। लोग दो-सौ रुपये में घर का खर्च अच्छी तरह चला लेते हैं। बुरे-भले समय के लिए कुछ संचित भी कर लेते हैं, परन्तु आपको तो बस पहेलियों से प्यार है। हर मास तीस चालीस रुपये यूं उड़ा देते हैं और फिर एक दिन की बात हो, तो भी—पिछले चार वर्षों से यूँ हो रहा है!!"

"भलीमानसे! एक बार इनाम आ गया तो सब नये-पुराने गिल्ले दूर कर दूँगा!" नंदलाल जी हँस कर कहते हैं।

"हूँ……इनाम आपके लिए ही तो सँभाल कर रखा है उन्होंने! सब अपने भाई-बन्दों को दे देते हैं!"

परन्तु बाबू नंदलाल को यह बात जँचती नहीं। "यदि आल करेक्ट आजाए तो किसमें साहस है कि अपना इनाम रोक ले। सालों पर मुकद्दमा न कर दूं!" वे ठीक सोचते हैं परन्तु इनाम तो ऊंटनी का निचला जबड़ा है। अब गिरा कि अब गिरा और लोमड़ी इस आशा में मुंह उठाये साथ-साथ चलती जा रही है, परन्तु जबड़ा है कि गिरता ही नहीं!

× × ×

आठ बज गये हैं। शाम थकी-मांदी, आने वाली जवान रात्रि के लिए सेज खाली कर रही है। अंधेरा बढ़ने लगा है। घंटाघर की सीढ़ियों पर अभी से खानाबदोश बल्कि खाना वक्फ लोगों ने कपड़े बिछाकर अपने लिए स्थान लिया है। भाई थानसिंह ने गुटका एक ओर रख

दिया है। लेम्प के मध्यम प्रकाश में पाठ करना असम्भव है। गुटका एक ओर रख कर वह उठ खड़ा हुआ है और सामान सिमेटने लगा है। राजू, जिसे ज्वर था, अब भी उसी तरह लेटा है, परन्तु अब उसे आराम है। एक-दो दिनों में बिल्कुल ठीक हो जायेगा तो काम करने लगेगा। सरहद्दी पेन-विक्रेता ने दुकान बन्द करने की इच्छा से तख्ते समीप ला रखे हैं। आज वह दुकान शीघ्र ही बन्द करने लगा है। पंडित मुरारी ने जो गोली आठ आने में दी है, उसे उनके लिए वह उत्सुक है। "जब तक जिह्वा के नीचे रखो, तब तक ऐश लूटते जाओ!" पंडित मुरारी ने कहा था—आज ऐश लूटने का दिन है। इसलिए वह शीघ्र-से-शीघ्र घर जाना चाहता है—लेटर-बक्स एक भयावनी आँख खोले चुपचाप देख रहा है। उसके पेट में हजारों भेद हैं परन्तु वह सीप की तरह उन्हें छिपाये हुए है। वह दुनियाँ का सबसे बड़ा और सबसे ज्यादा ईमानदार अमानतदार है। बाबू नंदलाल के पहले सोलह हल अब भी उसके पेट में हैं। वह किसी को कुछ नहीं कहता। कुछ नहीं बताता, परन्तु सब कुछ जानता है। उसके साथ वाले मोचियों के स्टाल कब के सुनसान हो चुके हैं। अंधेरा पड़ते ही ये लोग उठ जाते हैं। मधुबाला और सुरैया की अर्धनग्न तसवीरों वाले पोस्टर देखने के लिए सिनेमा-हालों में पहुँचते हैं। बाजार का यह भाग, जिसकी रौनक सुबह दोपहर और शाम से ही है, अब सुनसान हो रहा है। सड़क पार करके लौट आइए। हलवाई की दुकान पर काम करने वाला छोकरा अब भी उसी तरह काम में लीन है। उसके पास अवकाश का कोई क्षण नहीं। वह पंडित दयालचन्द से पैसे जरूर मांगेगा। उसने निश्चय कर लिया है कि जरूर मांगेगा, चाहे उसके लिए उसे शोर-शराबा ही क्यों न करना पड़े—लड्डो अलबत्ता कहता है कि वह हजार प्रयत्न करे, उसे पैसे नहीं मिलेंगे, जब तक कि वह......

दयालचन्द जी अपनी मासूम लीडराना आकृति लिए गुप्ता पनवाड़ी के पास खड़े हैं। पत्रकार बनने वाला सुन्दर लड़का वचन-विरुद्ध नहीं

आया। उसे शायद किसी ने राज कुछ बता दिया है। इसलिए दयाल-चन्द जी नये शिकार की खोज में प्रयत्नशील हैं। आश्चर्य है, इतने बड़े नगर में, जहाँ हर वर्ष आठ-दस हजार लड़के मेट्रिक पास करने के बाद बेकार हो जाते हैं, कोई एक भी पत्रकार बनने पर राजी नहीं। आश्चर्य है ···· आश्चर्य है, साढ़े आठ बजते ही दातुनवालियों का शोर किसी सीमा तक कम हो गया है। रमापती एक ओर चुपचाप बैठी है। दातुन खरीदते हुए दो लड़के जेब से नोट निकाल कर बार-बार उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वह उठ खड़ी हुई है। कटोरा लेकर पानी लेने के बहाने से भीतर स्वर्गीय गजराजसिंह की हवेली में जा रही है। जहाँ भारत-पब्लिशर्ज, पेंटर, डाक्टर और स्पोर्टस की दुकानें बन्द हो चुकी हैं। भीतर घुप्प अंधेरा है। केवल पार्टी दफ्तर में बत्ती जल रही है। भीतर अंधेरे में बात हो सकती है। इसलिए वह कटोरा लेकर भीतर जा रही है। आज उसे किसी ने नहीं टोका। आँख उठाकर भी उसकी ओर किसी ने नहीं देखा। वह स्वतन्त्र है, जो चाहे कर सकती है।

एक-दो डोगरी, गुप्ता पनवाड़ी की दुकान के पास खड़ा एक ग्राहक से सिग्रेट माँग रहा है 'मालिकों की ऐश हो जाए······एक सिग्रेट इधर भी······" और जब ग्राहक सुनी अनसुनी करके, सिग्रेट सुलगाकर आगे बढ़ जाता है तो एक-दो डोगरी के पास गाली देने के सिवाय कोई चारा नहीं। "मालिकों की माँ की······ऐश हो जाए!" वह बड़ी कटुता से कह कर थूक देता है। गुप्ता के चेहरे पर मुस्कान की एक रेखा उभरी है और मिट गई है। वह ऐसी गालियाँ सुनने का आदी हो गया है। एक-दो डोगरी उसकी दुकान के फर्नीचर एक जरूरी भाग है। ग्राहक से सिग्रेट मांग कर वह गुप्ता को लौटा देता है और दाम अपने हिसाब में लिखवा लेता है।

जगतसिंह की चाय की दुकान के बाहर कृष्णदयाल 'गुल', अनोखसिंह, गुरदयालसिंह और चखराम खड़े हैं। किसी बात पर बड़े जोर का

विवाद हो रहा है। दयालचंद जी चलते-चलते उनके पास आ खड़े हुए हैं। उन्हें इस समय और कोई काम नहीं। वे पुराने अनुभवी और चिराभ्यासी पत्रकार हैं। अपने पोस्टर के अनुसार 'हिन्दी में कि स्वतंत्रता युद्ध के बूढ़े जर्नेल" हैं—राजनीतिज्ञों के साथ पत्रकारों का चोली-दामन का साथ है। इसलिए वह विवाद में भाग लेने के लिए वहाँ आ खड़े हुए हैं। भारत-पब्लिशर्ज़ की दुकान बंद होने पर हरीश जो गुप्ता से एक सिग्रेट ले रहा था, दयालचंद को देखकर वहाँ आ गया है। हरीश एक ही काँइया है। कई दिनों वह दयालचंद को चोर की सी दृष्टि से देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा है। वह दयालचंद को समीप नहीं फटकने देगा। केवल बातों-ही-बातों में दो-चार रुपये उधार ले लेगा या उनके दफ़्तर में पड़ी अख़बारों की पुरानी फ़ायलें रद्दी में बेच कर कुछ पैसे खरे कर लेगा—चोर को मार पड़ना इसे ही तो कहते हैं।

कुमार मालिश करवाने के बाद फिर नरेन्द्र और प्रकाश के पास पहुँच गया है जो देवेन्द्रसिंह को चाय पिलाने के लिए विवश करने पर तुले हुए हैं। नौ बजने में अभी काफ़ी समय है और टी हन्टर्ज़ दो-तीन बार और चाय पी सकते हैं। देवेन्द्र की जेब में भी ताजा कविता है। वह उसके सुनाने के लिए बार-बार उत्सुक हो रहा है। वह कुमार से कविता की पंक्तियों के बहाव और छंदबंदी में सम्मति भी लेना चाहता है, परन्तु चाय के लिए काफ़ी पैसे उसकी जेब में नहीं हैं। आखिर थक कर वह जाने को ही होता है कि कुमार फिर ब्रह्मदेव को आते देखकर उसे रोक लेता है, "ब्रह्मदेव, जिंदाबाद, आ गये ?"

"हाँ......" ब्रह्मदेव खुली हँसी हँसते हुए कहता है, "आओ चाय पियें......" और वह जेब से एक रुपये का नोट निकाल कर दिखाता है। "आओ......" नोट के साथ उसकी जेब में कविता वाला पुर्जा भी निकल आया है ? जिसे देखकर देवेन्द्र के दिल में खलबली-सी होने लगी है। सहसा उसे एक ख़याल सूझा है।

"फ़िफ्टी-फ़िफ्टी......" उसने कहा है, "आधे पैसे मैं दूँगा, आधे ब्रह्मदेव !"

"ठीक है......" नरेन्द्र ने अपनी रहस्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा है—"और कविताएँ दोनों की सुनेंगे। चाय के साथ कुछ खायेंगे भी......आधे पैसे तुम देना और पूरे ब्रह्मदेव देगा !"

× × ×

"दो मिनट रह गये हैं। नोट लेने हों तो मेरे पास आ जाओ। बंद करने में दो मिनट रह गये हैं!" रेडक्रास की लाटरी वाला अपनी भारी सुरत आवाज में कह रहा है। कैश गिनकर उसने लोहे की संदूकची एक ओर रख दी है। पाँच-सौ छब्बीस—आज का दिन बहुत अच्छा रहा, कमीशन पाँच सौ छब्बीस आने, अर्थात् बत्तीस रुपये चौदह आने !

"दस दिनों की रोटियाँ निकल आई है......" वह जैसे अपने आप से कहता है, "ऐसे ही दस दिन और लग जायें तो मजा आ जाये !" परन्तु लाटरी निकलने में थोड़ी अवधि रह गई है। काश, साहनी साहिब पंद्रह दिन और पीछे डाल दें !"

"एक मिनट, केवल एक मिनट शेष है।" उसने बटन दबाकर बैटरी बंद कर दी है और उठ खड़ा हुआ है। बाहर निकल आया है। कैश का डिब्बा रेडक्रास के क्लर्क ने सँभाल लिया है। कुर्सी और मेज फ़ोल्ड करके बाहर रख दिये हैं। ये सब चीजें रिक्शा में रखकर वह घर ले जायेगा। यहाँ सिवाय तम्बू के और कुछ नहीं रहना चाहिए।

रोजा-होटल पर दो-तीन घंटों के लिए जो बहार आई थी, वह अब समाप्त हो गई है। निचले कमरे में कोई ग्राहक दिखाई नहीं पड़ता। ऊपर गैलरी में अलबत्ता कुछ-न-कुछ है। एक स्त्रैण कहकहे की आवाज तैरती हुई बाहर आई है, तो एक ऊपर एक स्त्री भी है ? दूर खड़ा किशन हलवाई आँख दबाकर इन्द्र से पूछता है, जो बाहर दुकान से सिग्रेट लेने आया है। "हाँ......" उसने सिर हिलाकर स्वीकृति-सूचक उत्तर दिया है "और हाँ......" उसने होंठ बिचका कर

यह भी बता दिया है कि शराब भी है—चौक में रौनक अब भी है परन्तु उसमें वह रंगीनी नहीं, जो पहले थी। स्त्रियाँ बहुत कम ही दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ देर में चौक सुनसान हो जायेगा। दुकानें बंद हो रही हैं; या हो चुकी हैं। केवल चार होटल और तीन हलवाइयों की दुकानें खुली रह जायेंगी। सिग्रेट-पान की पाँच छः दुकानें भी खुली रहेंगी। दस बजने के बाद यह भी धीरे-धीरे बन्द हो जानी आरम्भ हो जायेंगी।

किशन हलवाई अपनी दुकान के बाहर एक ओर बिछी जगदीश की चारपाई पर आ बैठा है। जगदीश शायद सिनेमा देखने गया है। किशन हलवाई ने दूर से आती हुई मध्यम कद की स्त्री को देखकर अपनी सिग्रेट का गुल झाड़ा है और उसके बैठने के लिए स्वयं परे खिसक कर स्थान बना दिया है। स्त्री आकर उसके पास बैठ गई है। "सिग्रेट पियोगी," उसने पूछा है और फिर अपनी सिग्रेट उसे पकड़ा दी है। "हरी, ओ हरी, इक चाह और इक बंद" उसने कहा है, "इधर भेज दे अपनी मासी के लिए!" और फिर खिलखिला कर हँसा है। स्त्री भी उसके साथ हँसने लगी है—"इधर ओ इधर, तेरी मासी बैठी है।" मज़ाक शायद बहुत पुराना है। इसलिए हरी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

"तो फिर?" किशन ने अपने घुटने उसकी जांघों से चिपका कर बैठते हुए कहा है, "तो फिर?"

"कुछ नहीं, आज तो······कोई आसामी है?

"हाँ, दो हैं। पाँच-पाँच मिलेंगे······" किशन ने बाँयां हाथ बढ़ाकर उससे सिग्रेट ले—ली है।

× × ×

साढ़े आठ बज रहे हैं। पृथा साहब लखखड़ाते हुए बाहर निकले हैं। पेशावर होटल के एक बैरे ने उनके स्कूटर को फुटपाथ से उतार कर सड़क पर ला खड़ा किया है। पृथा साहिब ने सिग्रेट का एक लम्बा

कश लिया है और जोर से लड़खड़ाये है। "आप चले जायेंगे? ठीक-ठाक?" बैरा बार-बार उनसे पूछ रहा है। "हाँ······हाँ ······" पृथा साहब ने उत्तर दिया है। तनिक संभले हैं। पान चबाते हुए और सिग्रेट का कश लगाते हुए वह स्कूटर पर जा बैठे हैं। आटल दबाया है और चल पड़े हैं—अकेले हैं, शायद जितेन्द्र अभी तक ऊपर सोया हुआ है।

मूंछों वाला बैरा कल वापस जा रहा है। मोटे मालिक से बातचीत हो चुकी है। कल सुबह की बस से वह चला जायेगा। आज पृथा साहब से ही उसे बारह-पंद्रह रुपये बच गये हैं। किराया ही सही! वह अपने आप से कहता है। एक तरफ़ का किराया ही सही। इस समय वह कुछ चीजें खरीदने बाज़ार तक गया हुआ है। सुबह उसे चला जाना है।

× × ×

चौक की आत्मा पँख फैलाये उससे जुदा होने को है। नौ बजते ही इक्का-दुक्का व्यक्ति ही दिखाई देने लगेगा और नौ बजने में अब देर ही क्या है। आज रोज के समय से कुछ पहले ही बेरौनक़ी हो गई है। दरेसी ग्राऊंड में नया सरकस आया है, बहुत से लोग शायद उधर चले गये हैं। बहरहाल आज रोज़ से पहले ही बेरौनकी हो रही है। दिन का ब्रह्मा जो अपना एक महायुग खत्म कर चुका है, अब अन्तिम सांसें ले रहा है। इसके बाद रात है। अंधेरी, काली रात—शून्य, समय और अंतरिक्ष की कैद से आज़ाद शून्य—जिसमें कुछ नहीं है। लम्बी-अंधेरी रात, जिसमें अंधेरे का अस्तित्व भी केवल इतना है कि वह शून्य का एक भाग है। जब तक ब्रह्मा का दूसरा दिन शुरू नहीं होता, तब तक यह लम्बी अंधेरी रात रहेगी।

रात पड़ रही है। घंटाघर तारों-भरे नीले आकाश की ओर अपना मग़रूर सिर उठाये खड़ा है। उसके पाँव में दर्जनों खाना-बदोश, बल्कि खाना-बवफ़ लोग सोने की तैयारी कर रहे हैं। घण्टाघर की छत्र-

छाया में बे-आसरा लोगों का आसरा मिलता है। बे-पनाह लोगों को पनाह मिलती है। बेघर लोगों के लिए घर है। अशरण लोगों के लिए शरण है।

आकाश पर पाँचवीं का एक चौथाई गोल चन्द्रमा निकल आया है। उसकी पीली रोशनी फैलने में असफल हो रही है। पिशावर होटल पर वही रिकार्ड बज रहा है—'मैनूं रब दी सौं; तेरे नाल प्यार हो गया', वे चन्ना सच्ची मुच्ची !"

—अपने चाँद से प्यार तो पुष्पा को भी था पर······

× × ×

साढ़े ग्यारह बजे हैं। चौक सुनसान है। कुछ चमगादड़ें जो बड़ी हवेली की ड्योढ़ी से उड़ती हुई बाहर आई थीं, अब गोल चक्कर के बोर्डों के इर्द-गिर्द चक्कर काट रही हैं। सब होटल बन्द हैं। किशन हलवाई की दुकान भी बन्द हो रही है। एकाएक बिजली बंद हो गई है। शायद पीछे कहीं फ्यूज़ उड़ गया है। साथ के सिनेमा-घर में शोर का एक तूफान उठा है परन्तु शीघ्र बाद सिनेमा वालों ने अपना जनरेटर चला कर तसवीर फिर शुरू कर दी है। शोर बन्द हो गया है। हर ओर चुप्पी है। चुप-चाप, जैसे शहर को मरे हुए दस हज़ार वर्ष बीत गये हों। कोई रिक्शा, कोई तांगा नज़र नहीं आता। बिजली चले जाने से एक विचित्र प्रकार का अंधेरा फैल गया है। पंचवीं का चाँद जो साढ़े आठ बजे निकला था, कब का छुप चुका है। अंधेरा है, काला गाढ़ा अंधेरा, जिसमें एक हाथ को दूसरा नहीं सूझता।

जगदीश अपनी चारपाई खेंच कर ड्योढ़ी के बड़े द्वार तक ले आया है। दरी बिछा कर वह बैठ गया है। जेब से मोमबत्ती और माचिस निकाल कर उसने रोशनी की है। मोमबत्ती को सिरहाने की ओर चारपाई के एक पाये पर जमा दिया है। शोला एक बार भड़का है फिर धीरे-धीरे जलने लगा है। दो वर्ग फुट के दायरे में रोशनी का कमज़ोर-सा वृत्त फैल गया है। तकिये पर कोहनी रखकर जगदीश ने

सीने मे एक पुस्तक निकाल ली है और पढ़ने लगा है—"विमला ने कपड़े उतार दिये और कहने लगी, "कहीं रोशनी में नहीं अंधेरे में ···"

बिजली चले जाने से अंदर पार्टी-दफ्तर में भी अंधेरा हो गया है। कामरेड सेन गुप्ता बाहर निकला है। उसके हाथों में भी एक पुस्तक है। वह जगदीश की चारपाई पर आया है। एक शब्द कहे बिना ही जगदीश ने उसके लिए चारपाई पर स्थान बना दिया है। वह बैठ गया है। गोर्की की 'माँ' का वह पन्ना उसने खोल दिया है, जहाँ पावेल फैक्ट्री में इश्तहार बाँटने जाता है। उसने पढ़ना आरम्भ किया है, "पावेल ने कहा; दोस्तो ! वह जमाना शीघ्र आने वाला है। वह समय निकट है, जब ···"